श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

नियमसार प्रवचन

द्वितीय भाग

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सम्पादक :—

महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

प्रकाशक —
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उ० प्र०)

प्रथम संस्करण] १०००
१९६८
[मूल्य ५० पैसे

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसादजी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ

संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी

श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली :—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ,	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर	मेरठ
१७	,,	मंत्री जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन संघी,	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, जैन	गिरिडीह
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	गिरिडीह
२६	,,	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर

२७	श्रीमान्	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
२८	,,	गोकुलचंद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९	,,	दीपचद जी जैन ए० इंजीनियर,	कानपुर
३०	,,	मंत्री दि० जैनसमाज, नाई की मडी,	आगरा
३१	,,	सचालिका दि० जैन महिलामडल, नमक की मंडी,	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस,	रुड़की
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, थिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३७	,, ❀	गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन बजाज	गया
३८	,, ❀	बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा,	झूमरीतिलैया
३९	,, ❀	इन्द्रजीत जी जैन, वकील स्वरूपनगर	कानपुर
४०	,, ❀	सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या,	जयपुर
४१	,, ❀	बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ.	सदर मेरठ
४२	,, ❀	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४३	,, ×	जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
४४	,, ×	जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला
४५	,, ×	बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला

नोटः— जिन नामोके पहले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है।

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

[१]

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान॥

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥

[३]

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान॥

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम॥

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम॥

•••○○•••

नियमसार प्रवचन द्वितीय भाग

[प्रवक्ता:— अाध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज]

(जीवके स्वरूपका वधाधिकारमे वर्णन करके अब इस अधिकारमे अजीवका वर्णन किया जा रहा है।)

अणुखंधवियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो ॥२०॥

अजीवोमे पुद्गलका प्रथम वर्णन-- अजीव ५ प्रकारके होते हैं--पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन पाचो द्रव्योमे से पुद्गलद्रव्य स्पष्ट है और व्यावहारिक प्रयोगमे अधिकतया आता है। इस कारण उन अजीवोंके भेदमें सर्वप्रथम पुद्गलद्रव्यका वर्णन किया जाता है। पुद्गलद्रव्य दो प्रकारका है— एक अणु और दूसरा स्कध। यद्यपि पुद्गलके ये दो भेद नहीं हैं--परमाणु और स्कध। स्कध तो अनेक पुद्गलोके पिण्डका नाम है, फिर भी स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल इस प्रकार दो भेदके आधार से परमाणु और स्कध-- ये दो भेद पुद्गल के मान लिए जाते हैं।

स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल—स्वभावपुद्गल वह है जो केवल पुद्गल है, एक है। अद्वितीय अद्वैतपुद्गलको स्वभावपुद्गल कहते हैं और जो अद्वैत नहीं है, वरन् निमित्त या नैमित्तिकके सयोगरूप है, वह विभावपुद्गल है। विभावपुद्गल स्कधका नाम है, स्कधावस्था पुद्गलक बधनरूप अवस्था है, एक विशिष्ट संयोगकी अवस्था है। स्कंध मटकेमे भरे हुए चनोकी तरह परमाणुवोंका पुञ्ज नही है। मटकेमे चने बधे हुए नही है, किन्तु स्कंधमे पुद्गलपरमाणु वधे हुए हैं और ऐसे वधे हुए है कि शुद्ध पुद्गलका कार्य नजर नही आता। स्कंधका काम होता है, इसलिए इस विभावावस्थामे अर्थात् अनेक द्रव्योंके सयोगरूपावस्थामे हुए स्कधोको भी पुद्गल कहते है। स्वभावपुद्गल नाम है परमाणुका और विभावपुद्गल नाम है स्कधोका।

स्वभावपुद्गलके प्रकार— स्वभावपुद्गल भी दो प्रकारके हैं--एक कार्यपरमाणु और दूसरा कारणपरमाणु। बात वही एक है, कोई भिन्न-

भिन्न जगहमे ये दोनो पाए नही जाते कि कारणपरमाणु कोई और होता होगा और कार्यपरमाणु कोई और होता होगा। इसी प्रकार परमाणुमें कारणताकी मुख्यतासे कारणपरमाणुका व्यपदेश है तथा जो कुछ होगा उसमें परिणमन भी है। एक ही परमाणु रहकर उस परमाणुके स्वरूपका आश्रय करके जो होगा, वह कार्यपरमाणु है। जो परमाणुका सहजस्वरूप है, उसका नाम है कारणपरमाणु और उस परमाणुका जो व्यक्तरूप है, जिसमे पांचों रसोंमें से एक रस है, पांच वर्णोंमें से एक वर्ण है, दो गधोंमें से एक गध है और चार स्पर्शोंमे से दो स्पर्श हैं—ऐसे कार्यरूप परिणत परमाणु कार्यपरमाणु कहलाते हैं। परमाणुसे अपना कोई वास्ता नहीं चल रहा है, इसलिए पुद्गलद्रव्यका स्वरूप भी जीवकी तरह सूक्ष्म है और जैसे जीव अनेक चमत्कारों वाला है, इसी तरह यह पुद्गलपरमाणु भी अनेक चमत्कारों वाला है।

जीव और पुद्गलका चमत्कार— जीवका चमत्कार चेतन जातिका है और पुद्गलका चमत्कार पुद्गलजातिका है। ये कार्यपरमाणु एक समयमें १४ राजू तक गति कर लेते हैं और जीव भी एक समयमे १४ राजू तक गति कर लेता है। लोकके नीचेसे निगोदजीव मरा और सिद्धलोकमे निगोद बना तो वह भी गमन कर लेगा। परमाणु जैसे-जैसे विविक्त होते हैं, जैसे-जैसे वे न्यारे होते हैं तैसे ही तैसे उनमे शक्ति और चमत्कार प्रबल होता जाता है। जिस प्रकार जीव कर्मोंमें, शरीरमें, बडे-बडे शरीरों मे, मच्छ जैसी देहोमे बडे विस्तार और पिण्डरूपसे बन जाता है, वैसे ही उसका चमत्कार कम होता है और जैसे ही शुद्ध हो जाता है, कर्म और शरीरके पिंडोसे विविक्त होता है, हल्का होता है, चमत्कार बढता है और जब जीव बिलकुल अकेला हो जाता है तो उसका चमत्कार सर्वोत्कृष्ट हो जाता है। इसी तरह ये परमाणु जैसे-जैसे न्यारे होते हैं, अकेले रहते हैं, तैसे ही तैसे चमत्कार भी बढ़ता है। लोकमे प्रयोगके लिए भी अणुकी शक्ति अधिक बतायी है और स्कंधोकी शक्ति कम बतायी है। अणुशक्ति रेल चलना, कारखाने चलना और बडे-बडे विघात कर सकना आदि सब बातें आजके आविष्कारमे सिद्ध की जा रही हैं। यद्यपि वे अणु नहीं हैं, किंतु स्कधोकी अपेक्षा वह सब अणुशक्तियोंका सचय है।

स्कधोके प्रकारोका निर्देश – स्वभावपुद्गल दो तरहके है—कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु। विभावपुद्गल ६ प्रकारके हैं, जिनको आगेकी गाथावोमे बताया जाएगा, उन छहोंके नाम ये हैं—स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म। इनका विवरण और उदाहरण सब आगेकी गाथावोमे प्रकट होगा। इनको सक्षेपमे यो समझ लीजिए कि

जैसे पृथ्वी है वह स्थूल-स्थूल है—हाथमे ले लो, फेंक दो, रख दो, अतः यह स्थूल-स्थूल है। जलको हम ईंट-पत्थरकी भांति रख नही सकते, यह बिखर जाता है, ढेला नही बन सकता, किंतु पकड़मे आता है, इस कारण जल स्थूल है। जैसे स्थूलसूक्ष्म छाया है, यह पृथ्वीकी तरह धरी भी नही जा सकती कि इस छायाको संदूकमें भरकर रखलें और जलकी तरह पकड़ी भी नहीं जा सकती। छायाको कोई पकड़ नहीं सकता है, किन्तु दिखती जरूर है, यह स्थूलसूक्ष्म है। रूप, रस, गंध, स्पर्श—ये विषय सूक्ष्मस्थूल हैं। देखो, ये खूब समझमे आ रहे हैं, पर इन्हें देख भी नहीं सकते, छाया की तरह इनका मोटारूप नही है और कर्मोंकी योग्य पुद्गलवर्गणाएँ हैं, ये सूक्ष्म है। कर्मवर्गणाके योग्य पुद्गल ये अतिसूक्ष्म हैं। यह सब वर्णन आगेकी गाथावोमें आएगा, यहा तो परमाणुका स्वरूप विशेपरूपसे समझो।

लोकयात्राका साधन— अणुमे गलनस्वभाव है। गलनेसे अणु पैदा होते हैं, बिखरनेसे, अलग होनेसे अणु बनते हैं और पूर जानेसे, सचय हो जानेसे स्कध नाम पड़ता है। यों पुद्गलके इस क्रमसे भेद कहे गए हैं कि मूलमें वे दो प्रकारके हैं—स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभाव-पुद्गल नाम है परमाणुका और विभावपुद्गल नाम है स्कधका। स्वभाव-पुद्गल दो प्रकारके हैं—कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु और विभाव-पुद्गल ६ प्रकारके कहे गए हैं। इन पुद्गलपदार्थोंके बिना लोकयात्रा नही बन सकती। शायद आप लोकयात्रा समझ गए होंगे। सिखरजी, गिर-नारजी आदिकी यात्रा इन पैसे पुद्गलो बिना न होती होगी। यही ध्यानमे होगा तो यह भी थोड़ा-थोड़ा लगा लो, पर यहा तो लोकयात्रासे मतलब है कि यह संसारीजीव ससारमे डोलता रहता है। इतनी लम्बी लोक-यात्राएँ पुद्गलके बिना नहीं हो सकती हैं।

परेशानीकी प्रयोजिका लोकयात्रा— भैया! पुद्गलद्रव्यका जानना भी अतिआवश्यक है, जिसके सम्बन्धसे यह जीव भटक रहा है। जिससे हमे छूटना है, उस पुद्गलकी भी तो बात देखो— कितनी लम्बी-लम्बी यह जीव यात्रा करता है? मरनेके बाद तो बड़ी तेज यात्रा होती है। एक-एक समयमे ७-७, १०-१०, १४ १४ राजू तक चला जाए—ऐसी लम्बी लोक-यात्राएँ इस जीवकी पुद्गलद्रव्यके बिना नहीं होती। यद्यपि एक समयमे मुक्तजीव भी ७ राजू तक यात्रा करता है, किंतु उसे यात्रा नही कहते है। यात्रा तो वह है जहा यह जीव भटकता है, जिसके बाद फिर वापिस डोलता है, उसीका नाम यात्रा है। ससारीजीव कहींसे कही भी पहुचे, उसे फिर भी भटकना है। देखो तो, कहां-कहां भटककर आज मनुष्यभवमे

पैदा हो गए ? यहां जो कुछ मिला, उसीमे मग्न हो गए। है कुछ नहीं और मग्नता इतनी विकट है कि हैरानी हो रही है, छूट नहीं सकते। मनमें दृढ़ता आए तो छूटनेमे भी विलम्ब नहीं है, पर दृढ़ता नहीं ला सकते और है कुछ नहीं। कहींके पटके आज यहा हैं, यहांसे गुजरकर कल कहीं पहुच गए, कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह लोकयात्रा इस जीव को परेशान कर देती है।

परेशानी शब्दका भाव— परेशान शब्दका अर्थ क्या है ? परेशान शब्द है तो उर्दू का, पर इसका संस्कृतमें अर्थ होता है 'पर है ईशान जिसका'। उसे कहते हैं परेशान। परेशानका जो परिणाम है उसका नाम परेशानी है। ईशान मायने मालिक, परपदार्थ है मालिक जिसका। उस जीवको कहते हैं परेशान। जिसने अपनेको परके लिए सौंप रखा है, मैं तो इसका हू— ऐसा जिसने भाव बनाया है, उसका नाम है परेशान अर्थात् परतन्त्र और परेशानका परिणाम है परेशानी अर्थात परतन्त्रता। यहा इस जीवको परेशानी है पुद्गलके सम्बन्धसे। इसमें भी मूल अपराध अपना है। पुद्गलका क्या अपराध है ? वह तो अचेतन है, उसमे तो कोई आशय ही नहीं है। उसने क्या अपराध किया ? अपराध है यहा खुदका कि जो अपने सहजज्ञानस्वरूपसे चिगकर अज्ञानभावमे रत हो रहे हैं। अज्ञानभाव है विषय और कषायके परिणाम। उन विषयकषायोंमें रति होनेके कारण यह जीव अपराधी है, जिससे यह दुःखी है, परेशान है।

[नोट -- यहा इस प्रसगसे आगेकी कुछ हस्तलिपि गुम हो गई है। अत इसका हमे अफसोस हे।]

—प्रकाशक

कर्मकी भिन्नता व निमित्तनैमित्तिकता-- इन कर्मोंको टालनेके लिए जीव समर्थ नहीं है ऐसा लोग कहते हैं। यह बात पूर्णरूपसे ठीक है, कर्म तो परद्रव्य है। आत्मा कैसे टलेगा ? अपने विभावोंको उपयोगसे हटाकर शुद्ध ज्ञानस्वरूपमे पहुचे--ऐसी बात तो की जा सकती है। कर्म अपने आप टल जायेंगे, मिट जायेंगे। उनको मिटानेका लक्ष्य बनाकर कोई यत्न करे तो मिटता नहीं है। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी प्रधानता रखकर विनती और स्तुतियोंमें अनेक बातें पायी जाती हैं, वे असत्य नहीं हैं, किंतु उनका मर्म जानना चाहिए। जैसे कहते हैं कि 'कर्ममहारिपु जोर, एक न काम करे जी' कितना भी कहो एक भी प्रार्थना नहीं सुनते—ऐसे महारिपु ये कर्म हैं। सो मनमाना देख लो, किसीसे नहीं डरते हैं। अरे !

वे बेचारे अचेतन खुद अपनी परिणतिसे विभावरूप परिणमने वाले ईमानदार हैं। कभी धोखा नही देते, जैसे हैं तैसे ही सामने है। उन कर्मोंका निमित्त पाकर यह जीव दुःखी होता है। इस सम्बन्धको लेकर उस ओरसे यह बात कही जाती है और फिर प्रभुसे हम विनती करते हैं कि 'दुष्टन देउ निकारि साधुनको रख लीजै' अर्थात् इन दुष्टकर्मोंको हे भगवान! निकाल दो और जो हम साधु है, बडे अच्छे हैं, हमे रख लीजिए अथवा हममे जो गुण भरे है, उनको तो ठीक कर दो और इन कर्मोंको निकाल दो। यह कर्मोंकी प्रधानताका स्तवन है।

स्तवनपद्धतिया— कभी तो निमित्तोंकी प्रधानताका स्तवन होता है। जैसे मानो भगवानके ऊपर दया करके कहते हो कि हे भगवान्! तुम अनगिनते जीवोंको तारते-तारते थक गए हो, इसलिए तारना तो हमे भी, पर धीरे-धीरे तारना। भगवान पर दया कर रहे हैं। थके-थकाये भगवानको सता नहीं रहे हैं कि हमे जल्दी-जल्दी तारो, बल्कि कह रहे है कि हमे धीरे धीरे तारो। बड़ी दयाकी दृष्टि जाहिर करके भगवानकी स्तुति जाहिर की जा रही है और कही कुछ उनके उलहानेकी दृष्टिसे उनकी स्तुति कर दी जाती है। हमे क्यो नही तारते भगवन ? हमे क्या है ? न तारो, पर बुराई तुम्हारी ही होगी कि ये कैसे तारनतरन हैं कि यह भक्त तो ऐसी निष्कपट भक्ति कर रहा है और भगवान कुछ विवेक भी नहीं करते। अत कितने ही प्रकारोसे स्तुतियां की जाती हैं।

कर्मपर अवशता— कर्मोंका सम्बन्ध बताकर प्रभुसे निवेदनरूप जो इस प्रकारकी स्तुतिया की जाती है, वे निमित्तकी प्रधानता रखकर की जाती हैं। ये है और जीवके साथ निमित्तनैमित्तिक बन्धनको लिए हुए हैं, पुद्गलस्कंध हैं, फिर भी ये परपदार्थ है, इन पर हमारा वस नहीं है। हमारा वस निजविभावों पर है, स्वभाव पर है। ये कर्म सूक्ष्मविभावपुद्गल हैं।

सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गल— अब सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गलकी बात सुनिए। है तो कार्माणवर्गणाएँ, जाति तो वही है, फिर भी उनमें अनन्तवर्गणाएँ ऐसी रहती हैं कि वे कर्मरूप बन ही नही पातीं, वे सूक्ष्मसूक्ष्मपुद्गलस्कंध कहे गए है। कर्म बननेके अयोग्य कार्माणवर्गणाये सूक्ष्मसूक्ष्मविभावपुद्गल है।

अविवेक नाट्य— यह जीव नाना प्रकारके देहोमे वध-बधकर उस कालमे एक विभावपर्यायरूप बनकर इस लोकमे बड़ा नृत्य कर रहा है। अत. जीवके स्वरूपको देखो कि वह तो एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। जितना यह नृत्य हो रहा है, यह अविवेकका नृत्य है। इस अविवेकके नृत्यमे

वर्णादिक पुद्गल नाचते हैं। ये पुद्गल ही अनेक प्रकारसे दिखाई देते हैं। जीव तो अनेक प्रकारका है नहीं। मूलमें जीव तो एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है और ये पुद्गलस्कंध नानारूप हैं। अतः जो एक ही आत्मतत्त्व है, वह तो जैसा है वहीं अवस्थित है। जिस दृष्टिको लेकर अपरिणामवाद ने यह बात जाहिर की है कि आत्मा एक है, सर्वत्रव्यापक है, उसकी छाया पाकर ये मन और शरीर सब जीवरूप पर्यायोंको रखते हैं।

स्याद्वाद व पक्षाग्रहसे सत्यता व असत्यता— जैनसिद्धान्तकी भाषामें आत्मस्वरूपको आत्मा मान लिया जाए तो वे सब बातें घटित हो जाती हैं। आत्मद्रव्य तो प्रतिव्यक्ति जुदा जुदा हैं, उसका समस्त परिणमन जुदा-जुदा है, किन्तु उन सबका स्वरूप क्या जुदा जुदा है ? स्वलक्षण और स्वभाव जो एक जीवका स्वरूप है, वही दूसरे जीवका भी स्वरूप है। केवल स्वरूपदृष्टिको ही लखा जाए तो वह एक है, किन्तु स्वरूपदृष्टिसे लखनेकी तो बात थी और लखने लगे प्रदेशवान्की दृष्टिसे तो वह कथन अब स्याद्वादसे मेल नहीं खाता है। जैसे अंधेको बताना तो है खीरका स्वाद, पर खीर जैसा सफेद बगुला होता है। अत बगुलाकी जैसी चोंच हाथको बनाकर अंधेके आगे रख दे तो जैसे वह विडम्बना है, वैसे ही आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे जो विवरण है, वह व्यापक है, एक है, अपरिणामी है। सब सही बातें हैं, किन्तु उस विषयको स्वभावकी दृष्टिसे न तककर, बल्कि स्वभाववान यह आत्मा है और आत्मपदार्थ है, प्रदेशवान् है, ऐसे धीरे-धीरे फैलकर, ऐसे तत्त्वकी ओर झुककर सर्वथा जब यह कहा जाने लगा कि आत्मा तो एक है, व्यापक है, भिन्न-भिन्न तो है हो नहीं। जीवके यह भ्रम हो गया है कि मैं अमुक हू, अमुक हू और इस भ्रमसे ससारमें भटकता है, ऐसा कथन बन गया है।

प्रकरणसे प्राप्तव्य शिक्षा — स्वभावदृष्टिसे देखो तो जीव एकस्वरूप है, वह नृत्य नहीं करता, किन्तु इस अविवेकके नाचमें ये वर्णादिमान् पुद्गल ही नृत्य करते है।'यह जीव तो रागादिकपुद्गलविकारोंसे रहित शुद्ध चैतन्यस्वरूप है—ऐसी भावनाके लिए यह वर्णन चल रहा है।

निवर्त्यमान पदार्थोंके परिज्ञानकी आवश्यकता— ६ प्रकारके विभावपुद्गलोंका अभी वर्णन किया गया है। नाना प्रकारके पुद्गल यद्यपि दिख रहे हैं, किंतु हे भव्य पुरुषोत्तम ! तुम उन किन्हीं भी पुद्गलोंमें प्रेमभावको मत करो। जिनमें प्रीति नहीं करनी, जिनमें मोह नहीं बसाना, उन पुद्गलोंका अभी वर्णन चल रहा था। जिनसे प्रीति नहीं करनी, उनको यह बतानेकी आवश्यकता हुई है कि अनादिसे ये जीव उनमें मोह किए आ रहे है। जिनमें मोह किए आ रहे हैं, उनकी असलियत न मालूम पडे तो

वहांसे मोह कैसे हटाया जाय ? ये समस्त पुद्गल जड़ हैं, मूर्तिक हैं, मेरे चित्स्वभावसे अत्यन्त भिन्न है, उन पुद्गलोमे हे भव्य पुरुषोत्तम ! तू रति भावको मत कर।

पररतिपरिहार व निजरतिविहार— भैया ! रति तो चैतन्य चमत्कार मात्र अपना जो आत्मस्वरूप है उसमे कर। इसके प्रतापसे तू परम श्री जो अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी है उसका अधिकारी होगा। ये पुद्गलके वर्णन राग करने के लिए नहीं किए गए है किन्तु राग हटानेके लिए किए गए हैं। इनमे तेरा कोई गुण नहीं है। इन पुद्गलोमे दृष्टि लगाकर इनमे ही सग्रह विग्रहकी कल्पनाएँ करके अपना घात क्यो किया करते हो ? इन सब पुद्गलोसे अत्यन्ताभाव रखने वाले इस निज चैतन्यचमत्कारमात्र आत्म-तत्त्वको देखो।

पुद्गलके प्रकरणमे सर्वप्रथम कारणपरमाणुवों, और कार्यपरमा-णुवोंका जिक्र किया था। अब उस ही स्वभावपुद्गलके इन दो भागोका वर्णन श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव करते है।

धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणंति तं णेओ।
खंधाणं अवसाणो णादव्वो कज्जपरमाणू ॥२५॥

कारणपरमाणु और धातुचतुष्क—कारणपरमाणु तो वह है जो चारो धातुवोका कारण होता है। चार धातुवे हैं पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। यद्यपि देखनेसे वनस्पति भी एक स्वतंत्र काय है और दो इन्द्रिय आदिक पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोके शरीर भी काय हैं और धातु चतुष्टय इन दोनों का ग्रहण नही करता है फिर भी ग्रहण हो जाता है। जो कड़ी चीज हैं पिण्डरूप चीज है वह सब पृथ्वी तत्त्वमें आ गया। यद्यपि भिन्न क्षयोपशम वाले जीवोके भेदसे पृथ्वीमे और मनुष्यादिक शरीरोमे भेद है, फिर भी पिण्डरूपताकी दृष्टिसे स्थूल स्थूलपनेकी दृष्टिसे यह सब पृथ्वी मान लीजिए।

पिण्डरूप कायोको पृथ्वीमे गर्भितकी जा सकनेकी दृष्टि—पृथ्वीमे ये सब पिण्डात्मक चीजे आ गयी। पेड होना, कीड़ा मकौड़ा का शरीर होना, मनुष्यका शरीर होना ये सब पृथ्वीमे मान लिए गए। व्यवहारमे भी कहते हैं कि यह मिट्टी है शरीरके जलनेपर कहते हैं कि मिट्टी मिट्टीमे मिल गयी तो एक दृष्टिसे जितने ये पिण्डात्मक काय है वे पृथ्वी कहलाते है।

जल धातु—पृथ्वीकी जातिसे जल भिन्न जातिका है, वह प्रवाही है। कोई पिण्ड रूप नही है। जैसे चौकीका एक हिस्सा पकड कर ले जावो तो सारी चोकी जाती है, पृथ्वीके ढेलेको जरा भी पकड़ कर खींचो तो

सब खिच आता है इस तरह पानी तो नहीं है कि मुट्ठीमें पानी पकड़ कर खींच ले तो कुवेका सारा पानी खिचा चला आए। वह ऐसा स्थूल पिण्डात्मक नहीं है।

अग्नि व वायुनामक धातु––जलकी जातिसे अग्नि जुदी चीज है। परस्पर दोनों विरोधी हैं। जल आगको मिटा देता है और आग जलको खौला देती है। ये मूषक बिलाव जैसे परस्पर विरोधी हैं। देखो इसीलिए आचार्योंने जो ५ स्थावरोंका सूत्र बनाया है— "पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतय. स्थावराः" पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तो पहिलेकी जो तीन चीजें हैं पृथ्वी, जल और आग, इन तीनोंके बीचमें जल रखा है। बीचमें जल नहीं आवे और पृथ्वी और आग, समीप हो जायें तो क्या हाल हो सब भस्म हो जाये। यह शब्दोंकी बात कह रहे हैं। परसोनीफिकेशन अलंकारमें देखो तो जल और आग दो विरोधी जातिकी दो धातुयें हैं। वायु यह भी विचित्र जातिका है। वायु चलती है और शरीरमें लगती है, आंखों नहीं दिखती।

धातुचतुष्ककी एकद्रव्यता––ये चार धातुवें हैं, इनकी जाति न्यारी न्यारी है। प्रकरणवश जितनी सीमामें न्यारा-न्यारापन दिखता है उतना ही देखता है यह जीव। वैसे तो ये चारों एक पुद्गल जातिके हैं। ये भिन्न-भिन्न जाति के चार तत्त्व नहीं हैं।

पदार्थोंकी जातियोंके सम्बन्धमें बेमेल दर्शन—देखो कुछ दार्शनिकोंकी बात कि चार महाभूतोंको तो स्वतन्त्र स्वतन्त्र तत्त्व कहते हैं जो कि मूलमें एक जातिरूप हैं। पृथ्वी जल बन जाय, जल आग बन जाय। आग हवा बन जाय, जो चाहे जो बन जाये। ऐसे जो भिन्न-भिन्न जातिके नहीं हैं उन्हें तो स्वतन्त्र चार तत्त्व कहा और चैतन्य (जीव) जो कि अत्यन्त पृथक् जातिका है उसे कहते हैं कि भूतसे उत्पन्न हुआ, पृथ्वी, जल, आग, वायुसे बना। कितनी बेमेल बात कही जा रही है? जो एक है उसे तो अनेकमें रख दिया, जो विलक्षण नहीं हैं उन्हें तो विलक्षण मान लिया और जो इन चारोंसे अत्यन्त विलक्षण हैं ऐसे चैतन्य तत्त्वोंको भूतोंसे उत्पन्न हुआ मान लिया। पृथ्वी, जल, आग और वायु एकमें मिल जायें तो क्या जीव बन जाता है। ऐसा कहने पर बड़ा घपला हो जायेगा। कहीं मिट्टी की हडीमें चूल्हे पर कढी बनाये तो उसमें से आदमी, सेर आदि निकलने चाहिये क्योंकि वहा पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चारों चीजें मिल गयी हैं। देखो जो अत्यन्त विलक्षण तत्त्व है चैतन्य, उसे तो मान लिया गया कि भूतोंसे उत्पन्न हुआ और ये भूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु जो एक पुद्गलके परिणमन हैं उन्हें भिन्न मान लिया गया।

धातुचतुष्कोका परिवर्तन--बतावो पृथ्वी कभी जल बन सकती है या नहीं? बन जाती है। चन्द्रकांतमणि या और भी अनेक दृष्टान्त हैं वे गल जाते हैं और पानी हो जाते है। जल आग बन जाता है कि नही? बन जाता है। जब जल गरम हो जाता है, गरमीका रूप रख लेता है तो उसमें अग्नितत्त्व आ गया अथवा कालान्तरमे जलके अणु आगरूप बन सकते है पृथ्वी आग बन जाती है कि नही? बन जाती है। कोयला, लकड़ी, पत्थर ये सब आग बन जाते हैं। कोई कुछ बन जाय, यह सम्भव है इन चारोमें।

प्रत्येक धातुमें गुणचतुष्कताके सम्बन्धमें चर्चा—इस सम्बन्धमें कुछ लोग यह कहते हैं कि पृथ्वीमे तो गंध पायी जाती है। पृथ्वीका लक्षण गंध है और पानीका लक्षण है रस और आगका लक्षण है रूप और वायुका लक्षण है स्पर्श। उनका कहना है कि पृथ्वीमे गंध ही पायी जाती है और जलमे रस ही पाया जाता है और ऐसा मानते भी हैं कि लोग भी झटिति जलमें से रस तो आप समझेंगे और अग्निमे रूप समझेंगे और हवामें स्पर्श समझेंगे और इतना तो जल्दी ध्यानमें आयेगा कि हवामे स्पर्शके सिवाय कुछ नहीं है। न रूप देखनेको मिलता है, न गंध, न रस। किसी हवामें कोई गंध आ जाय तो उसे हवाकी गंध नही कहते, किन्तु जिन कूड़ा कचरोंको विखेरती हुई हवा आयी है उन कूड़ा कचरोकी गध है। कूड़ा कचरा है पृथ्वी।

प्रत्येक धातुमे गुणचतुष्कता--भैया! वास्तविक बात यह है कि पृथ्वी में भी रूप, रस, गध, स्पर्श चारो गुण है, जलमे भी चारो गुण है अग्नि में भी चारों हैं और वायुमें भी चारों हैं। चाहे आपको कोई चीज मालूम पडे अथवा न मालूम पडे। यह नियम है कि इन चारों विषयोमे से एक भी चीज हो तो वहां ये चारो ही होंगे। अग्नि किसी ने चखी है क्या कि वह खट्टी होती है या मीठी? शानमे आकर कहीं चखने नहीं बैठ जाना। कोई रस तो अग्निमें नहीं चखा गया, फिर भी उसमें रस है, अव्यक्त है। चारोंमे चारो गुण पाये जाते हैं। पृथ्वीकी बात तो जल्दी समझमे आ जायेगी कि उसमें रूप है, रस है, गध है, स्पर्श है। जलकी बात जरा कम समझमे आयेगी। जलमें गंध जल्दी नहीं मालूम होती, रूप दिख जाता है, रस दिख जाता है, स्पर्श दिख जाता है पर गध नही मालूम पडता। पर गध भी है उसमे। हवामे केवल स्पर्श मालूम होता है पर हैं उसमें भी सब। एक भी न हो ऐसी बात नहीं है। ऐसे ही अनुमान करलो कि जो चीज जिस चीजको बनाती है जिसने बनाया उसमें जो गुण होगे वे कार्य मे भी गुण आ गये। मिट्टीका घडा बनता है तो मिट्टीमे जो गुण पाया जाय वह घड़ा बनने पर भी उसमे रहता है।

हवामें भी गुणचतुष्कता—अच्छा देखिये—एक अनाज आता है जौ। जौ बहुत सस्ता अनाज था, तब लोग जौ भी खूब खाते थे। अब इतना मंहगा अनाज हो गया, फिर भी जौ बहुत कम लोग खाने वाले होंगे। देखो कितनी विचित्र बात है? जौ में बतावो कि रूप है या नहीं? है। इसमें रस भी है, गंध भी है, स्पर्श भी है। जौ से हवा बनती है पेटमें। जौ खा लो तो उससे भारी हवा बनती है, जो परेशान करती है। यह हवा पेटमें नीचेसे निकल जाती है। इससे हवा बहुत बनती है। उस हवामें भी चारों गुण हैं। मालूम पड़े अथवा न मालूम पड़े, समस्त पुद्गलोंमें चारों गुण हैं। बांस तो पृथ्वी है ना, प्रकरणके अनुसार चारों धातुवोंमें सबको गर्भित करना है। बांसोंके आपसमें रगड़ खानेसे आग पैदा हो जाती है। जिसके उपादानमें ये चारों चीजें हैं, उसके कार्यमें भी चारों बातें हैं। इस तरह ये चारोंके चारों ही धातुवें एक पुद्गल जातिमें आयीं, लेकिन कुछ सीमा तक इसमें जातियां बन गयीं और उन दृष्टियोंसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—ये भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं।

परमाणुवोंमें धातुकी कारणरूपता—चारों धातुवोंका जो कारणरूप है, उसे कारणपरमाणु जानो अर्थात् परमाणुकी व्यक्त शक्ल किन रूपोंमें हुआ करती है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि धातुवोंके रूपमें। यह तो हुआ कारणपरमाणु। जो इन चार धातुवोंका बीजभूत है और इन स्कंधों का जो अवसान है, बिछुड़ते-बिछुड़ते जो अंतिम अविनाशी अंश है, उसे कार्यपरमाणु कहते हैं। वह परमाणु था नहीं परमाणुके रूपमें, अब विघटते-विघटते वह परमाणु रह गया, अविभाज्य अंश रह गया। परमाणु अंश नहीं है, अंशी है, परिपूर्ण है, अविभाज्य है, वह कार्यपरमाणु कहलाता है। इस गाथामें कारणपरमाणु द्रव्यका और कार्यपरमाणु द्रव्यका स्वरूप बताया गया है। जो पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार धातुवोंका कारणभूत है, उसे तो कारणपरमाणु कहते हैं।

परमाणुवोंकी बन्ध्यरूपता—वह कारणपरमाणु जब जघन्यपरमाणु रह जाता है अर्थात् स्निग्धरूक्ष गुणकी जब वहां अनन्तता नहीं रहती है, जघन्यअंशित्वको किए रहता है, तब चाहे एक जातिके हों अथवा भिन्न जातिके हों, वे बंधके अयोग्य हैं। पुद्गलपरमाणुवोंमें जो कि अलग बिखरे हुए हैं, वे स्कंध बने, मिल जायें इसका कारण तो वहां है स्निग्ध और रूक्षगुण। जो वर्णन चलता है स्निग्धरूक्षत्वाद्बंध, वह परमाणु-परमाणुके लिए बात है। स्कंध और स्कंधोंका वर्णन नहीं है कि इस प्रकार से वे एक दूसरेको अपने रूप परिणम लें, किन्तु परमाणुवोंमें यह बात है कि कोई अजघन्यगुणी चिकना परमाणु हो और उससे दो गुण अधिक

परमाणु हो तो वे दोनों एक स्कंध बन जायेंगे और वह स्कंध सारा रूक्ष हो जायेगा। जो गुण अधिक हैं, उसी रूप दूसरा परिणम जायेगा।

परमाणुवोंके बंधनका कारण— यह बंधन स्निग्धरूक्षगुणके कारण होता है। ठण्ड-गरमीके कारण नहीं कि एक ठण्डा परमाणु हो और एक गरम परमाणु हो अथवा एक कम ठण्डा हो, दूसरा अधिक ठण्डा हो और वे परमाणु मिल जायें, एक बंध हो जाये--ऐसा उस गुणके कारण एक बंधन नहीं होता है। स्निग्धरूक्षगुण जब अपनी बंधनयोग्यकी सीमामें जितने अंश होना चाहिये, उन अंशोंसे ऊपर हो और अन्याणुमें अधिक दो गुण हो जायें तो उसका परस्परमें जो बंध है वह समबंध है और तीन गुण अधिक वाले परमाणुवोंका पांच गुण अधिक वाले परमाणुवोंके साथ बंधन होनेको विषमबंध कहते हैं। यह चर्चा है परमाणुवोंकी।

पुद्गलोंकी परिस्थितियां— उन परमाणुवोंके जाननेसे क्या फायदा और न जाननेसे क्या बिगाड़? हो गए रहने दो। इतना जानना तो आवश्यक है कि आत्मातिरिक्त अन्य सब पदार्थोंसे अत्यन्त पृथक हूं, फिर भी जितना अधिक बोध होगा, उतनी ही भेदविज्ञानकी विशदता प्रबलतामें सहायता होगी। अब जो अनन्तगुणोंसे ऊपर दो गुण, चार गुण आदिका बंधन कहा गया है, वह उत्कृष्टपरमाणुकी बात है। वैसे उससे कम अंशके भी स्निग्ध और रूक्षमें बंध होता है, पर जघन्यगुण वालेके साथ बंध नहीं होता है। यह आचार्यदेवके द्वारा सर्वज्ञ प्रतीत उपदेश बताया गया है। ये बिखरे हुए परमाणु किस ढंगसे ऐसे एक स्कधरूप हो जाते हैं कि उसमें परमाणुसम्बन्धी कार्य अब व्यक्त नहीं होता। चौकीके रूपमें परमाणुवों का पुञ्ज हो गया तो अब परमाणु परमाणुके रूपमें परिणमन व्यक्त कर सके, यह बात अब कहां है? जला दो तो जल जायेगा। परमाणु कहीं जलते भी हैं?। अतः ये अणु इस प्रकार स्निग्धरूक्षगुणके कारण बंधन को प्राप्त होते हैं।

अणुवोंके प्रकार— चार प्रकारके अणु हैं--कारणपरमाणु, कार्यपरमाणु, जघन्यपरमाणु, उत्कृष्टपरमाणु और मध्यके भेद लगावो तो परमाणु के अनन्त भेद हो जाते हैं। उस परमाणुद्रव्यमें विभावपुद्गल नहीं आये है। विभाव नाम है स्कधपरिणमनका— ऐसा विभावका भेद है। वे अणु अपने स्वरूपमें स्थित हैं।

पारिणामिक भाव और परिणामका अनिवार्य सम्बन्ध—कारणपरमाणुवों का परमस्वभाव है पारिणामिक भाव। पारिणामिक भाव केवल चेतनमें ही नहीं होता है, बल्कि समस्त द्रव्योंमें पारिणामिक भाव है। वह एक स्वभाव

जो कि परिणमनका आधार स्रोतभूत है, जिसका परिणमन ही प्रयोजन है, उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। हे पारिणामिक भाव ! तुम किसलिये हो ? जरा जबाब तो दो। उसका जबाब यही होगा कि हमें कुछ मतलब नहीं है, हम तो परिणमनके लिये है। ध्रौव्यका प्रयोजन है उत्पादव्यय और उत्पादव्ययका प्रयोजन है ध्रौव्य। ये चीजें क्यों बनती बिगड़ती हैं ? क्या उत्तर होगा ? बने रहनेके लिये बनती-बिगड़ती हैं। ये चीजें क्यों बनी रहती हैं ? बनने-बिगड़नेके लिए बनी रहती हैं। यह सब पारिणामिक भाव प्रत्येक पदार्थमें होता है।

पुद्गलके परिज्ञानका प्रयोजन—अजीवाधिकारमें और अजीवमें मुख्य, जिसके साथ प्रकट निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध आत्माका चलता है—ऐसे पुद्गलका वर्णन चल रहा है। पुद्गल दो प्रकारके हैं—स्वभावपुद्गल और विभावपुद्गल। स्वभावपुद्गल दो प्रकारके हैं—कारणपरमाणु और कार्य-परमाणु। विभावपुद्गल ६ प्रकारके हैं, जिनका इस गाथामें वर्णन है ही। इन सब पुद्गलोंको जानकर ज्ञानीसंत यह भावना करता है कि ये सब पुद्गल हैं, किन्तु इन ६ प्रकारके स्कंधोंसे मेरा क्या प्रयोजन और चार प्रकारके अणुवोंसे अथवा दो प्रकारके अणुवोंसे मेरा क्या प्रयोजन ? मैं तो अविनाशी शुद्ध आत्माका आराधन करूँ। प्रकरण अजीवाधिकारका है और उसमें सर्वप्रथम पुद्गलका प्रसग है। उस प्रसंगमें अब परमाणुका स्व-रूप बता रहे हैं।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तत णेव इंदियेगेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू त वियाणाहि ॥२६॥

परमाणुका लक्षण— आत्मा ही जिसका आदि है, आत्माका अर्थ है अपन स्वयं। परमाणुका परमाणु ही स्वय आत्मा है और वही स्वयं मध्य और वही जिसका अत है। जो इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहणमें नहीं आता—ऐसा जो एक अविनाशीद्रव्य है; रूप, रस, गध, स्पर्शगुणमय है, उसको तुम परमाणु जानों। बहुत पतली निबसे एक छोटा बिन्दु बना दो, जिससे और छोटा बिन्दु हो ही न सके—ऐसा कल्पनामें समझो तो उस बिन्दुका आदि व अत अगर जुदा-जुदा है तो वह बिन्दु छोटा नहीं है, बड़ा है। छोटा बिन्दु वह होता है, जिसका आदि भी वही है, अन्त भी वही है और मध्य भी वही है।

परमाणुद्रव्य एकप्रदेशी होता है। उस एकप्रदेशी परमाणुमें यह विभाग कहासे किया जाये कि छोर तो यह है तथा ओर यह है। वह तो एक अद्वैत प्रदेशमात्र है, इसलिये स्वय ही आदि है, स्वय ही मध्य है और

स्वयं ही अन्त है। वह इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य नहीं है। इन्द्रियोंके द्वारा ग्राह्य तो कितने ही स्कंध भी नहीं होते हैं। परमाणु तो इन्द्रियग्राह्य है ही नहीं। ऐसा जो अविभागी मूर्तिक द्रव्य है वह परमाणु है। एक चीज उतनी कहलाती है जिसका कोई दूसरा विभाग न हो। कोई विभाग हो जाये तो समझना चाहिये कि वह एक चीज न थी, अनेक चीजें मिली हुई थीं और वे बिखर गयीं। जैसे दिखनेमें आने वाली चौकी, भींतादिक ये सब बिखर जाते हैं, टूट जाते हैं, ये एक चीज नहीं कहलाते हैं। इन्द्रियोंके द्वारा वे ग्राह्य नहीं हैं वरन् अविभागी हैं। एकका टुकड़ा नहीं होता यह पूर्णनियम है और हो गया टुकड़ा तो समझ लो कि वह एक चीज न थी।

जीव और पुद्गलकी सन्मात्रता—जैसे सभी जीव निगोदसे लेकर सिद्धपर्यन्त अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते। उन्हें सहजपरमपारिणामिक भावकी विवक्षाका आश्रय लेकर देखें तो इस निश्चयनयके द्वारा कोई कभी अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता, यह दृष्ट होगा। आत्माका स्वरूप है शुद्ध ज्ञानस्वभाव, ज्ञानज्योति, प्रतिभासमात्र। यह प्रतिभासात्मकता किसी भी जीवसे अलग नहीं होती है और परमपारिणामिक भावका लक्ष्य कराने वाले सहज निश्चयनयसे देखा जाये तो वह चूंकि स्वरूपमात्र दिखता है, अतः उस दृष्टिमें जीव-जीवके कहनेमें भी अन्तर नहीं है। वह अपने स्वभावसे कभी च्युत नहीं होता। कोई जीव चैतन्यात्मकता को छोड़कर अचेतन बन जाये—ऐसा कभी नहीं होगा। अब जरा इस सीमासे भी बढ़कर सामान्य गुण पर आयें तो वह सन्मात्र है। इस ही प्रकार इस परमाणुद्रव्यको उसी सहजनिश्चयनयके द्वारसे देखा जाये तो उसमें भी पारिणामिक भाव है। परमस्वभाव है, उस दृष्टिसे देखें तो यह भी सन्मात्र है।

परमाणुका अभिन्न आदिमध्यान्तपना—यह परमाणु स्वयं ही खुद आदि है। खुदका अर्थ संस्कृतमें आत्मा है। आत्माका अर्थ चेतनपदार्थ भी है और आत्माका अर्थ जिस पदार्थसे वहां वही पदार्थ है। जैसे बोलते हैं अजीव पदार्थके विषयमें कि यह चौकी अपने आप नहीं गिरी, अतः वहां अपने आपका अर्थ चौकी है, जीव नहीं है। चूंकि आप शब्दका प्रयोग अचेतनमें भी हुआ करता है। आत्मा शब्दका प्रयोग सभी पदार्थोंके लिये है, जिसका अपन खुद ही आदि है, जिसका अपन खुद ही अन्त है और वही मध्य है। एक प्रदेशमात्र कोई वस्तु है, उसका आदि और अन्त अलग-अलग नहीं है। उस ही का स्वरूप आदि है, उस ही की स्वतन्त्र परिणति मध्य है और उस ही का स्वतन्त्र परिणाम अन्त है।

परमाणुकी इन्द्रियगोचरता व अविभागिता— आदिमध्यान्तरहितताके कारण वह इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं है। वह न जलसे डूब सकता है, न अग्निसे जल सकता है, यह स्कध जलमें गल जाय और अग्निमें जल जाय पर परमाणु नहीं जलता है और न भीगता है। वह तो एक प्रदेश मात्र अन्तरके व्याघातसे रहित एक अविभागी अमूर्त द्रव्य है, उसे हे शिष्य! तुम परमाणु समझो। परमाणुका लक्ष्य अनेक प्रकारसे कहा गया है। उन सब लक्षणोंसे वह परमाणमें ही उपयोग वासित होता है। जो आकाशके एक प्रदेशसे अधिक प्रदेश पर न रह सके उसे परमाणु कहते हैं, पर एक प्रदेश पर अनेक परमाण ठहर सकते हैं मायने एक परमाणु अनेक प्रदेशों पर नहीं ठहर सकता।

स्वरूपच्युतिका खेद—देखो भैया! ये सब परमाणु अपने स्वरूपमे कैसे निर्वाध हैं, त्रिकाल अपना स्वरूप नहीं छोड़ते, कितने भी स्कधोंमें मिल जायें, एक बधनको प्राप्त हो जाये तो भी कोई परमाणु अपने स्वरूप का परित्याग नहीं कर पाते हैं। तो ये परमाणु तो अपनी ईमानदारीमे बने रहे और जानदार समझने वाला तीनों लोकमें सर्व श्रेष्ठ पदार्थ यह आत्मा अपने स्वरूपमे नहीं ठहर सकता तो इसे कितना अज्ञान कहा जाय?

सिद्धात्मा व शुद्धाणुकी श्रेष्ठता—सिद्ध भगवान तो ध्रुव रूपसे अपने स्वरूपमे ठहरे रहा करते हैं, परमाणु एक शुद्ध पदार्थ है और सिद्ध भगवान भी एक शुद्ध पदार्थ है। जैसा सिद्ध अपना अनन्त चमत्कार लिए हुए है इस ही प्रकार परमाणु भी अपना चमत्कार लिए हुए हैं। अपन हैं सिद्ध भगवानकी जातिके इसलिए सिद्धका गुणगान करते हैं। अगर कोई परमाणु और सिद्ध इनमेंसे किसी बिरादरीका न हो, कोई तीसरा हो तो वह तुलनामे दोनोंको समान तोलेगा, पर है नहीं कोई तीसरा ऐसा जो तौल सके। तौल सके तो वह जीव आ गया तो जैसे सिद्ध भगवान चैतन्यात्मक निज स्वरूपमे ठहरे रहा करते हैं इसी तरह शुद्ध परमाणु अपने स्वरूपमे अवस्थित रहते हैं।

कारणसमय व कार्यसमयकी भाति कारणपरमाणु व कार्यपरमाणमे स्रोत व उद्गम—जैसे कारण समयसारका आश्रय करके समय नामक पदार्थ कार्यसमयसाररूप होता है इस ही प्रकार कारणपरमाणुके आश्रयमे ही परमाणु व्यक्तरूप अपना परिणमन किया करते है। जैसा आत्माका समस्त परिणमनोंका स्रोतभूत प्रयोजनभूत सहज शाश्वत चैतन्य प्रभु है जिसे पारिणामिक भाव कहते हैं इस ही प्रकार पुद्गल परमाणुके समस्त परिणमनोंका स्रोतभूत उसका भी पारिणामिक भाव है, पारिणामिक भाव ध्रुव है, उसका प्रयोजन परिणाम है। परिणाम अध्रुव है, उसका प्रयोजन

पारिणामिक भाव है, यह समस्त विश्व अर्थात् छहों जातिके पदार्थ व्यक्तिगत रूपसे अनन्त जीव, अनन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य, ये प्रत्येक पदार्थ अनेक अन्य पदार्थोंके साथ एकक्षेत्रावगाह होकर सकर बन रहे हैं, फिर भी अपना स्वरूप नहीं तजते।

सत् की स्वय सुरक्षा--पदार्थका स्वरूप है उत्पाद व्यय ध्रौव्य। प्रत्येक पदार्थ बनता है, बिगड़ता है फिर भी सदा बना रहता है। ये तीन बातें प्रत्येक पदार्थमे है। हम आप लोग किसलिए घबड़ाते हैं? अरे हम भी निरन्तर बनते है, बिगड़ते हैं और बने रहते हैं। यदि इन समागमोंका लोभ करके उनके छूटनेका ख्याल आने पर विपाद होता है तो अपनी बुद्धिको संभाले। आज यहा मनुष्य बने हैं तो पहिले कहीं और बने थे, अब आगे और बनेगे। जहां जायेगे वही पुद्गलोका कूडा तुरन्त मिल जायेगा। फिर इस ही एक विशिष्ट कूडे से क्यो मोह है? आगे मिल जायेगा। जायेगा कहां? मिलेगा शरीर न्यारे न्यारे ढगका। पर आप को तो मोहकी पड़ी है। सो इस प्रयोजनमे बाधा न आयेगी। जो होगा उसमे ही मोह करके आजकी चतुराई को निर्बाध बना सकेंगे और फिर दूसरी बात यह है कि अपना विनाश कहां है, सदा बने रहने वाले पदार्थ हैं। सब है सो अपन भी सदा बने रहने वाले है। बनना, बिगड़ना, बने रहना जब हमारा स्वरूप है तब फिर भय किस बातका? अपने स्वरूपका यथार्थ श्रद्धान हो, यथार्थ ज्ञान हो और उस ही मे रमण करे तो फिर वह खेदकी बात नहीं रहती है।

जैनसिद्धान्तमे मुख्य दो प्ररूपणा-- जैनसिद्धान्त आधाररूप स्वरूप और कर्तव्यरूप स्वरूप दो सूत्रोमें बता दिया है। उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत्—यह तो वस्तुका स्वरूप बताया है जिसका परिज्ञान करके हम अपने कर्तव्यमे सफल हो सकेंगे। तथा कर्तव्य बताया है--'सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग' सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों का सद्भाव एकत्व मोक्षका मार्ग है। दो ही बाते प्रधान है जिनके विस्तार मे फिर समस्त दर्शन आ जाता है। वस्तुस्वरूप और मोक्षमार्ग।

राष्ट्रीय ध्वजमें वस्तुस्वरूपका दर्शन--आजका जो राष्ट्रीय ध्वज है सब को मालूम है तिरगा है--हरा पीला और सफेद। और तिरंगा ही वस्तु स्वरूप हैं, तिरंगा ही मोक्षमार्ग है। वस्तुस्वरूपमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य बताया है। साहित्यमे उत्पादका वर्णन हरे रगसे किया जाता है। उत्पाद होना मायने हरा भरा होना। अभी कोई बुढिया से पूछे कि कहो बुढ़िया जी मजेमे हो? तो वह बुढ़िया कहती है कि बहुत मजेमे हैं, हम खूब हरी

भरी हैं— नाती हैं, पोते हैं, खूब धन भरा है। तो उत्पन्न होनेको लोग ह कहते हैं। कहते हैं कि वह तो बहुत हरया रहा है। तो उत्पाद व्यय ज है वह हरे रंगसे वर्णित होता है और व्ययका वर्णन होता है लाल र से। लाल पीला केसरिया ये सब एक जातिके ही रंग हैं कुछ तारतम्य साथ। जहां विनाशका वर्णन आता है, वहां लाल रंगका वर्णन किय जाता है खून खच्चर हो गया, लाल ही लाल जमीन हो गयी बड़ा भयंक युद्ध हुआ। इस कारण सर्वसंहार हो गया। तो विलयका वर्णन लाल रं से होता है। सो तिरंगा का एक रंग यह भी है और ध्रौव्यका वर्ण सफेद रंगमे होता है जो ध्रुव है, स्थिर है, स्वच्छ है, शाश्वत है। त तिरंगेमें हरा रंग उत्पादका सूचक है, लाल पीला रंग व्ययका सूचक है और श्वेत रंग ध्रौव्यका सूचक है। और भी देखो कि उन रंगोंमें बीचमे कौनसा रंग है, राष्ट्रीय पताकामे सफेद है और नीचे ऊपर लाल और हरा है। सफेद रंग बीचमें यह सूचना देता है कि जिस रंग पर हरा लाल चढ़ता है वह सफेद पर ही चढ़ता है। उत्पाद व्यय जो हुआ करते हैं वे ध्रौव्य तत्त्व पर ही हुआ करते हैं। ध्रुव वस्तु न हो तो उत्पाद और व्यय कहासे हों?

वस्तुस्वरूपके बारेमें चौबीस आरेका मर्म—और भी देखलो, २४ आरे का एक चक्र बना हुआ है जो यह सूचित करता है कि प्रत्येक वस्तुमें षड्गुण, षड्भाग हानि व भागवृद्धि है तथा परिणमन दो क्षणोंके पर्यायोंसे कहलाता है सो चढ़ाव उतार सब चौबीस हैं। सिद्धान्तवेत्ता जानते हैं, अनन्तभाग वृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, ये ६ वृद्धियां होती हैं और ६ हुई हानियां ये १२ हुई ना, और परिणमन एक समयके वर्तनाका नाम नहीं है, केवल एक ही षड्भाग वृद्धि हानि हो जाना, इतनसे परिणमन व्यक्त नहीं होता है किन्तु अगले क्षणमे भी इसी प्रकारका परिणमन हो तब वहां परिणमन मिल जाता है। यो २४ आरेका चक्र वस्तुके प्रतिसमय की परिणमनशीलताको जाहिर कर रहा है। यह झंडा फहर कर यह बताता है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।

राष्ट्रीय ध्वजमे परमकर्तव्यका संकेत— इस प्रकार वस्तुज्ञानका परिचय करके आत्माका श्रद्धान् करना, ज्ञान करना और आचरण करना कर्तव्य है। आत्मश्रद्धान् आत्मरुचिको कहते हैं और रुचिका रंग साहित्यमें पीला बताया गया है। सम्यक्चारित्र कहो, आचरण कहो, जिससे आत्माका विकास बढता जाता है वह हरा रंग है। सम्यग्ज्ञानका श्वेत रंग है, वह स्वच्छ है। इस ज्ञानको ही सम्यग्दर्शन कहते हैं। ज्ञानको ही सम्यग्ज्ञान

कहते हैं, स्थिर ज्ञानको ही सम्यक्चारित्र कहते हैं। अतः वे दो रंग भी ज्ञान पर ही चढ़ते हैं। २४ आरेका चक्र यह बतला रहा है कि आज २४वें तीर्थंकरका यह तीर्थ है। यह ध्वज फहराकर बतलाता है कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। अब पुद्गलके सम्बन्धमे स्वभावगुण और विभावगुणका वर्णन करते है।

एयरसरूवगंध दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं ॥२७॥

पुद्गलके स्वभावगुण और विभावगुण—एक रस, एक रूप, एक गंध और दो स्पर्श होना, यह तो है स्वभावगुण और विभावगुण तो सर्वइन्द्रियों द्वारा ग्राह्य हो सके, ऐसा सर्वप्रकटपना है। पुद्गलमे चार गुणोका होना अनिवार्य है—रूप, रस, गध और स्पर्श। कोई भी पुद्गल इन चार गुणों से कम गुण वाला नहीं है। जहां इनमेसे एक गुण वाला होता है, वहां चारों गुण होते है। ये गुण शक्तियां हैं, अनादि अनन्त स्वभावरूप हैं।

पुद्गलगुणोके परिणमनोका विवरण— अब पुद्गलके गुणोंमे प्रत्येकके भेद कहे जा रहे है। रस ५ प्रकारके परिणमनको प्राप्त होता है अर्थात् रसगुणके मूल ५ परिणमन होते हैं—तीखा, कडुवा, कषैला, खट्टा और मीठा। इन पांचोंमे सब रस आ गये। नमक, मिर्च—ये तीखे माने जाते हैं और करैला, गुरबेल, नीम—ये कटुस्वादमे आते हैं। कषैला जैसे आंवला होता है। खट्टापन नीम्बू, करौंदा जैसे फलोमे होता है। शक्कर या अन्य मीठे फलोमे मधुररस होता है। जितने प्रकारके रस होते हैं, वे इन पांचोके तारतम्य और संयोगसे होते है और शुद्ध भी होते हैं। पुद्गलपरमाणुवोमे इन ५ रसोमेसे एक रस रहता है। कोईसा भी रस हो। वर्ण ५ होते हैं—सफेद, पीला, नीला, लाल और काला। इन पाच वर्णोमे सभी वर्ण आ गये। जो वर्ण नाना प्रकारके दिखते है, वे तो ५ वर्णोमें तारतम्य और मिलावटको लिए हुए हैं। जैसे नीला, सुवापखी तथा गुलाबी आदि रंग हैं—ये सब किन्हीं रंगोके मेलसे बने हैं। पुद्गलपरमाणुवोमे इन ५ वर्णोमेसे कोई एक वर्ण होता है। गंधशक्तिके दो भेद हैं—सुगन्ध और दुर्गंध। पुद्गलपरमाणुमे सुगन्ध या दुर्गंधमे से कुछ एक होगा। स्पर्शशक्तिके ८ परिणमन हैं—रूखा, चिकना, ठण्डा, गर्म, कड़ा, नरम, हल्का व भारी। इनमेंसे चार तो आपेक्षितस्पर्श है और चार स्वतन्त्रपरिणमन है। हल्का, भारी, कड़ा, नरम—ये स्कधमे ही होते है। ठण्डा, गरम, रूखा, चिकना—ये स्पर्शगुणके स्वतन्त्रपरिणमन हैं। पुद्गलपरमाणुवोमे इन स्वतन्त्रपरिणमनोमे से कोईसे दो स्पर्श होते है।

एक गुणके दो परिणमनके विरोधमें जिज्ञासा व समाधान—यहां जिज्ञासा हो सकती है कि एक गुणके दो पर्याय किसी पदार्थमें नहीं हुआ करते, किन्तु यहां एक परमाणुमें दो स्पर्श बताये जा रहे हैं। तब क्या इस नियमका उल्लङ्घन है कि एक पदार्थमें एक शक्तिके दो परिणमन एक समयमें नहीं होते? समाधान यह है कि नियमका उल्लङ्घन कहीं नहीं है। वहां भी वास्तवमें दो शक्तियां हैं, दो गुण हैं। एक गुणके तो स्निग्ध और रूक्षत्व जैसा कुछ परिणमन होता है और एक गुणका ठंडा या गरम में से एक परिणमन होता है। उन गुणोंका नाम क्या है? अत: अप्रयोजनीभूत होनेसे उनका नाम नहीं मिलता है किंतु वे सब परिणमन स्पर्शन द्वारा ग्राह्य हैं, इस प्रयोजनको लेकर सामान्यरूपसे एक स्पर्शगुणके परिणमन बता दिये जाते हैं। जैसे जीवमें एक चैतन्यस्वभाव है, उस चैतन्यगुणके दो परिणमन हैं—जानना और देखना। तब क्या यहां भी इस नियमका उल्लङ्घन किया जा रहा है कि एक पदार्थमें एक शक्तिके एक समयमें दो परिणमन नहीं होते हैं? समाधान यह है कि नियमका उल्लङ्घन नहीं है। जीवमें वैसे दो शक्तियां है—एक ज्ञानशक्ति और दूसरी दर्शनशक्ति। किन्तु उन दोनों शक्तियोंका कार्य प्रतिभासस्वरूप है, इस नातेसे एक चैतन्यस्वभावसे कह दिया जाता है।

परमाणुवोंके प्रकार—परमाणुमें एक समयमें दो स्पर्श होते हैं। इस प्रकार दो स्पर्श होना, एक रस, एक रूप, एक गंध होना, इसे कहते हैं पुद्गलका स्वभावगुण प्रवर्तना। एक कोई परमाणु किसी रूपको लिए हुए है, कोई परमाणु किसी रूपको लिए हुए है। इन पांचोंमें से कोई रूप हुवा, किसीका कुछ है, किसीका कुछ हैं। ५ रसोंमें से कोई रस हो और चार स्पर्शोंमें से कोई दो स्पर्श हो, दो गंधोंमें कोई गंध हो। कुल परमाणु हमें कितनी तरहके मिलेंगे? इस गुणपरिणमनकी दृष्टिमें वहां मेलका कोई सवाल नहीं है। अत ५ रसोंमें से ५ रूपोंका गुणा किया तो ५×५=२५ और उसमें दो गंधोंका गुणा किया तो २५ गुणा२=५० और उसमें चार स्पर्शोंका गुणा किया तो ५०×४=२००। अत अनन्तपरमाणु २०० प्रकारके पाये जाते हैं।

विभावपुद्गलोंमें विभावगुण—यह तो जैनसिद्धान्त में परमाणुका स्वभावगुण बताया है और विभावगुण विभावपुद्गलमें होता है अर्थात् स्कधोंमें विभावगुण होता है। उस विभावगुणके होनेमें स्पष्ट रूपसे यह जान लीजिए कि वहां ८ स्पर्शोंमें से कोईसे चार स्पर्श होते हैं। जब तक परमाणुवोंका मेल न बने तब तक उनमें कड़ा और नरमका भेद नहीं आ सकता है। एक परमाणुका क्या कड़ा होना अथवा क्या नरम होना,

इस प्रकार हलका भारी यह भेद भी एक परमाणुमें नहीं होता है। तो ये विभावस्पर्श विभावपुद्गलोमे पाये जाते है। विभावपुद्गलका अर्थ है कि कई परमाणुवोका पुञ्जरूप स्कंध। कमसे कम स्कंध दो अणुवोंका पिण्ड होता है और फिर बढते-बढ़ते अनन्त परमाणुवोका स्कंध होता है। सुई की नोक पर ही जितना टुकड़ा खड़ा हो सकता है कागजका या मिट्टीका उस कणमे अनन्त परमाणु है। अनन्त परमाणुवोंके पिण्ड स्वरूप भी कई ऐसे हैं जो आखसे देखनेमे स्कंध नहीं आ सकते। इन स्कंधोंमें विभावगुण होते हैं।

विभावगुणोकी इन्द्रियग्राह्यता—ये विभावगुण इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होते हैं। स्पर्शने स्पर्श जान लिया, रसना ने रस पहिचान लिया, घ्राण ने गंध समझ लिया, नेत्रसे रूप परख लिया और कर्णेन्द्रियसे शब्दका परिज्ञान कर लिया। समस्त इन्द्रियों द्वारा ये पुद्गल स्कध ग्राह्य होते है। शब्द गुण नहीं है, न गुणका परिणमन है किन्तु वह एकद्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। पर वह इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होती है। कर्ण द्वारा, इसी कारण उसे कह दिया है।

शुद्धात्माकी भाति शुद्धाणमे एकत्व परिणमन—के एक परमाणु गुणात्मकताके इस प्रकरणमे यह जान लीजिए कि जैसे शुद्ध जीव अपन परिपूर्ण स्वतंत्रतया समर्थ एक एक गुणके कार्यमे निरन्तर रत रहता है, ऐसे ही ये परमाणु मेलसे रहित अपने स्वतत्र एक एक गुण परिणमन से वे परिणमते रहते हैं। वे परमाणुके एक वर्ण रस आदिक होते हैं और उनसे वे विकाशमान हैं—रहो, उनमें मेरी कौनसी सिद्धि है ? मेरी सिद्धि तो मेरे ही चित्तमे एक शुद्ध आत्मतत्त्व बसे तो है। वह परमाणुमे है अर्थात् गुणोंके पुञ्जमे हैं। परपदार्थ है, उनके कुछ भी शुद्ध परिणमनसे मेरे आत्मामे कोई सिद्धि नहीं है। इस कारण जो परआनन्दका अर्थी है ऐसा ज्ञानी संत एक निज आत्मतत्त्वकी भावना करता है।

निर्विकल्प समाधि—आत्माका हित निर्विकल्पसमाधिभावमें है। निर्विकल्प समाधि वहा प्रकट होती है जहां जाननहार और जाना जाने वाला यह एक रस हो जाता है। विकल्प उत्पन्न होनेका अवकाश वहां नही मिलता है जहां ज्ञान और ज्ञेय एक होता है। ज्ञान और ज्ञेय भिन्न हुए तो वहां विकल्प आ ही पडेंगे। ज्ञान और ज्ञेय भिन्न कब हो जाते है ? जब जानने वाला तो यह आत्मा है और जाननेमे आये हुए है परपदार्थ तो पर और आत्मा ये एक रस कहां हो सकते हैं ? ये तो अत्यन्त जुदा हैं। वहां विकल्प ही आयेंगे और कदाचित् इस आत्माको भी जाननेमे लगें इसमें अनन्तगुण हैं, ऐसा परिणमन है। सब चमत्कारो का ज्ञान करनेमें

लगे, क्या उस स्थितिमे भी हम निर्विकल्प समाधि पा सकते है ? खुद को जानकर भी यह खुदपर बना हुआ हो तो वहां भी समाधि नहीं पा सकते हैं। जब जाननहार ज्ञानमें जाननहार ज्ञानके स्वरूपको ही जाना तब वहा एक रस बनता है और निर्विकल्प समाधि प्रकट होती है।

निर्विकल्पसमाधिकी पात्रता—भैया ! ज्ञान ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावों को जाने तो वहा भी ज्ञान ज्ञेयका भेद पड़ जाता है। तो जहा अपने आपके गुणोंके, पर्यायोके नाना प्रकारके परिज्ञानसे भी निर्विकल्प समाधि के अर्थ उस कालमे सिद्धि नहीं होती तो परपदार्थोंका ज्ञान करते रहनेसे, उनमे उपयोग दिए रहनेसे हमारी सिद्धि कहासे होगी ? हैं ये सब जान लिया, हा इन्हें भी केवल जानकर छोड़ा तो पात्रता ऐसी जरूर है कि निर्विकल्प समाधि होगी। जो जाननेके साथ राग और द्वेषसे भी लिप्त हो जाता है उसके निर्विकल्प समाधि अथवा आनन्द प्रकट नहीं होता है। आत्माकी उत्कृष्ट सरलता यही है कि ज्ञान और ज्ञेयमे भेद न हो जाने पाय।

स्कन्धोके परिज्ञानकी अपेक्षा परमाणुके परिज्ञानका अच्छा असर—इन्द्रिय द्वारा व्यक्त और अपने रागद्वेष संस्कारोंके कारण शीघ्र समझमे आने वाले इन स्कंधोके परिज्ञानकी अपेक्षा परमाणुविषयक परिज्ञान करनेमे कुछ भलाई तो है, पर ज्ञान ज्ञेयकी एकरसता वहां नहीं हो पाती है। भलाई यो है कि परमाणुको जानकर जरा परमाणुमे रागद्वेष तो करो, आप क्या करोगे रागद्वेष ? और स्कंधोको जानकर स्कधोंमें रागद्वेष बना सकते हैं। फिर यो समझिये कि जैसे किसी को हिचकी बहुत आती हो और उसे कोई चालाक बालक चतुर बालक कुछ घबड़ाहटके ढंगसे उसको यह कहे कि तुमने आज बड़ा गजब कर डाला, उसकी चोरी क्यो की या और बात लगा दे जिससे वह कुछ अचम्भेमे पड़ जाय, तो इस अचम्भेकी स्थितिमें उसकी हिचकी रुक जाती है। लोग ऐसा करते भी हैं। तो जो कही कुछ समझमे आ रही है बात उनकी समझमे हिचकी नहीं रुकती और कोई कठिन ऊदबिलाव जैसी बाते मार दे अर्थात् एक विलक्षणताके बोधकी दृष्टि करा दे तो उसकी हिचकी रुक जाती है। तो परमाणुका परिज्ञान भी ऐसा विलक्षण बोध है कि परमाणुके वर्णनमे चाहे एक रस-पना एक वर्णपना एक गधपना दो स्पर्शपनाके जाननेमें लगे और एक प्रदेशमात्र है, अविभागी है आदि बातोके जाननेमें लगे, किन्तु दहा नानी की खबर तो रहेगी नहीं, और ऐसे ही धन वैभवकी खबर न रहेगी। तो इसमे कुछ नफासा मिला कि नहीं ? रागद्वेषके प्रवाहसे तो अलग हो गए, किन्तु यहा तो यह समझता है कि ऐसे भी विलक्षण स्वरूप वाले परमाणु के बोधमे भी हम विकल्प करे तो जानने वाला तो और है और जाननेमें

आया कुछ और है इस कारण वहां एक रसपना नहीं हो सकता है।

परपरिज्ञानके निरोधकी आवश्यकता--भैया ! उक्त प्रकारसे जब तक भी बुद्धि परपदार्थोंको जानकर इष्ट अनिष्ट भाव लाती है अर्थात् व्यभिचारिणी है तब तक इसको पर-घर जानेसे मना करो। और जब हमारी आपकी बुद्धि इतनी समर्थ हो जाय कि ये परपदार्थ भी जाननेमे आएँ तो भी यह बुद्धि व्यभिचारिणी न होगी अर्थात् रागद्वेषको उत्पन्न करने वाली न होगी, जैसे कि ज्ञानीसंत पुरुषोके ऊँचे गुणस्थान वालोमे सामर्थ्य होती है ऐसी सामर्थ्य हो जाय तो वहां फिर हटने और लगनेका कोई उपदेश नही है, जो चाहे ज्ञानमे आए। जैसे नई बहुवोको पर-घर जानेका सभी निषेध करते है और बड़ी बूढी होने पर उन्हें कौन निषेध करता है, इसी प्रकार जब तक बुद्धि परपदार्थोंमे इष्ट अनिष्टकी कल्पना करनेके लिए बनी हुई है तब तक आचार्य महाराज मना करते हैं कि परको छोड़कर अपने आपको जानो, पर-घर न जावो। अपने ही घरमे बुद्धिको लावो और जब इस ज्ञानाभ्यासके द्वारा उदासीनता प्रकट हो जायेगी तबका यह वर्णन है कि चाहे परमाणु ज्ञानमे आये चाहे कुछ ज्ञानमे आए, पृथक्त्ववितर्क विचार व एकत्ववितर्क, अविचार ध्यानमे कुछ आता रहे उससे आत्मविकासमे कोई बाधा नही आती है। पर इस समय हम आप ऐसी स्थिति मे हैं कि पर-घर जानेसे अपनी बुद्धिको रोकना चाहिए और अपने ही घरमे अपनी बुद्धिको लाना चाहिए। इस प्रकार स्वभावज्ञान और विभाव ज्ञानके प्रकरणमे यहां गुणदृष्टिसे परमाणु और स्कंधके परिणमनोंका वर्णन किया गया है।

अब पुद्गल पर्यायका स्वरूप बतला रहे हैं।

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जायो।
खधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जायो ॥२८॥

पुद्गलका निरपेक्ष परिणमन--परमाणुरूप पर्याय पुद्गलकी शुद्ध पर्याय है और वह परमपारिणामिक भावस्वरूप है। जैसे सभी पदार्थोंमें वस्तुगत षट् प्रकारकी हानि गुणवृद्धिरूप परिणमन होता है जो कि अत्यन्त सूक्ष्म है और अर्थ पर्यायरूप है ऐसा अर्थपरिणमन इस पुद्गलके भी होता है। यह परिणमन पुद्गलमे द्रव्यत्व गुणके कारण स्वयमेव हो रहा है, किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षासे नही परिणमता। यह वस्तुका स्वभाव है कि वस्तु है तो निरन्तर परिणमता रहता है ऐसा कोई पदार्थ नहीं होता जो है तो जरूर किन्तु परिणमे नही। परिणमन बिना है की सिद्धि नहीं। होती है और है के बिना परिणमनकी सिद्धि नही है। परद्रव्यकी अपेक्षा न रखकर जो परिणमन होता है वह स्वभाव पर्याय है।

स्वभावपरिणमन—स्वभाव पर्याय यद्यपि आदि अंतकर सहित है और ऐसा ही आदि अंत करि सहित निरन्तर इसमें परिणमन होता रहता है फिर भी स्वभावपर्याय परद्रव्यकी अपेक्षा न करके होता है, अतः यह शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयात्मक पर्याय है अथवा एक समयमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होनेसे सूक्ष्म परिणमन जो निरन्तर चलता रहता है वह इसकी शुद्धपर्याय है। जैसे आत्माके साथ अन्य द्रव्यका सम्बन्ध नहीं होता, उपाधिका संयोग नहीं होता तो वह आत्मा अपने स्वभावके अनुकूल समपरिणमन कर रहा है। इस ही प्रकार परमाणु जब अन्य परमाणुका भी सम्बन्ध नहीं पाता अथवा जीवका भी संयोग नहीं पाता तो वह परमाणु अगुरुलघुत्व गुणकृत षड्गुण वृद्धिरूपसे हानिरूपसे निरन्तर परिणमता रहता है।

व्यञ्जन पर्याय—दिखने वाले स्कंधोंमें कल्पनासे टुकडे कर करके ऐसा आखिरी टुकड़ा ध्यानमें लावो कि जिसका दूसरा अंश हो ही न सके ऐसा ज्ञानमें आया हुआ निरंश अणु देखो और उसमें परिणमन विचारो तो वह परिणमन एक न की तरह ज्ञात होगा। जैसे अशुद्ध आत्माके परिणमन व्यक्त विदित होते हैं किन्तु शुद्ध आत्माका परिणमन व्यक्त विदित नहीं होता, इसी कारण यावन्मात्र अशुद्ध परिणमन हैं ये चाहे अशुद्ध गुणपर्याय हों अथवा द्रव्यपर्याय हो उन सबको व्यञ्जन पर्याय कहा गया है।

परमाणुमे एकत्व परिणमन—तो जैसे सभी द्रव्योंमें जो कि शुद्ध हैं उनमें द्रव्यत्व गुणके कारण परिणमन चलता रहता है, इसी तरह शुद्ध परमाणुमे भी रूप, रस, गंध, स्पर्शका स्वतंत्र एकरूप परिणमन चला करता है अर्थात् जैसे स्कंधोंमे कई रंगोंके मेलका रंग भी दिखता है, जैसे—जैसे नीला, सुवापंखी, गुलाबी—ये सब रंग जो कि स्वतंत्र नहीं हैं किन्तु रंगोंके मेलसे बने हुए हैं, परमाणुमें रंगोंके मेलका बना हुआ यह सब रंग नहीं हुआ करता है क्योंकि वहां मेल कहांसे आया? एक परमाणु एक रं रूप है, दूसरा परमाणु भी एक रंगरूप है। यदि दो छोटे स्कंध जो विभिन्न रंगके हों और मिलकर पिण्ड बन जायें तो ऐसे स्कंधमें तो सम्भावना की जा सकती है अर्थात् एक परमाणुमे अपना ही शुद्ध एक रूप होता है। इसी तरह रस आदि गुणोंके परिणमनकी भी बात शुद्ध पायी जाती है।

जीव द्रव्यको ही उपदेशे जानेका कारण—६ जातिके द्रव्य होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल, इनमेंसे जीव और पुद्गल ये दो ही द्रव्य विभावरूप परिणम सकते हैं। शेष द्रव्य तो शाश्वत शुद्ध

रहा करते हैं, इसलिए अन्य द्रव्योंको शुद्ध होनेका उपदेश नहीं है। इन दो द्रव्योंमे से पुद्गलको भी शुद्ध होनेका उपदेश नही है। पुद्गल शुद्ध हो जाए तो क्या, अशुद्ध रहे तो क्या ? किसी भी अवस्थासे पुद्गलमें बिगाड़ नही है। यदि एक चौकीको काट छेद करके बिगाड़ दिया तो हम आप लोग अपनी कल्पनासे मानते हैं कि चौकी बिगड़ गयी। पर वहां क्या बिगड़ा ? चौकी तो जड़पदार्थ है। प्रत्येक परमाणु अपने आपमें अपना परिपूर्ण अस्तित्व लिए है। क्या बिगड़ा ? यहां पर तो पुद्गलका कुछ बिगाड़ नहीं है। किसी भी रूप परिणमे, उनमे खेद नहीं होता है। एक जीवद्रव्य ही ऐसा है कि विकृतावस्थामें यह आकुलित रहता है और जन्म-मरणकी परम्परावोंमे क्लेश पाता रहता है। उसे उपदेश है कि अय जीव, अपने सहजस्वरूपकी संभाल तो कर, तभी ये कर्मबंधन, नोकर्मसंयोग, विभावोंके संकट समाप्त होंगे।

वीतराग विज्ञानस्वरूप—छहढाला हिन्दी भाषाकी एक बहुत ऊँची पुस्तक है, जिसमें सब उपयोगी बातें दी गयी हैं। मंगलाचरणमे यह बताया है कि तीन लोकमे सार जो वीतरागविज्ञान है; वह शिवस्वरूप है, कल्याणमय है और आनन्दका देने वाला है; उसे तीन योग सभालकर मैं नमस्कार करता हूं। कितने संक्षिप्त शब्द हैं और बड़े अर्थ मर्मसे भरे हुए हैं। तीन लोकमें सार क्या है ? रागद्वेष रहित ज्ञानस्वभाव। यह ज्ञायकभाव स्वरसतः रागद्वेषादि विकारोंसे रहित है। यह वीतरागविज्ञान सब जीवोंमे पाया जाता है। हममे आपमे सबमें जो इसे नहीं जानते, वे दीन भिखारीसे बने रहते हैं और परपदार्थकी आशा किया करते हैं, पर को अपना, अपनेको परका मालिक मानकर दुःखी हुआ करते हैं।

लोककी सर्वस्थितियोमें क्लेश—भैया ! लोकमें हुकम माननेका ही दु:ख है ? अरे, जितना दुःख हुकम मानने वालेको होता है, उससे भी कहीं अधिक दुःख हुकम देने वालेको है। जितने क्लेश दूसरेके समक्ष छोटा बननेसे रहता है, उससे अधिक दुःख दूसरेके समक्ष बनकर रहनेमे होताहै। लोग कह भी देते हैं कि उदय जिसका खराब हो तो बड़ा भाई या और कुछ बड़ा बनता है। अतः इस लोकमे किस चीजमे सुख मान लिया जाए ? यदि किसीके पुत्र न हो तो मै पुत्ररहित हूं, मेरे कुलको चलाने वाला कोई नहीं है, यों सोचकर दुःखी रहता है। जिसके पुत्र हो, वह भी तो दु खी रहता है; नहीं तो बार-बार लड़कोको क्यों मारता, क्यों दांत किटकिटाता ? यदि पुत्र कुपूत हो गया तो उसका क्लेश होगा, व्यसनी हो गया, कुमार्गी भी हो गया, लड़ने-भिड़ने वाला हो गया, इस प्रकारके बड़े दुःख हैं।

यदि कोई पुत्र सपूत बन जाए तो उस कुपूतसे भी ज्यादा दु:खदायी हो जाता है, क्योंकि यदि कुपूत लड़केसे आपका मन नहीं मिलता तो एक बार स्पष्ट कर दिया कि यह मेरा कोई नहीं है या अखबारोंमें छपा दिया कि अब मैं इसका जिम्मेदार नहीं, अगर पुत्र सपूत है तो यह ध्यान बना रहेगा कि मैं इसे समर्थ बना दूं, सुखी बना दूं, बड़ा आज्ञाकारी है, बड़ा विनयशील है, अत. उसको सुखी करनेके लिए रात-दिन परिश्रम करना पड़ता है।

सर्वस्थितियोंके क्लेशका कारण स्वयका अज्ञानभाव— भैया! सभी बातों को ऐसा ही लगालो, हो तो दु:ख और न हो तो दु:ख। प्रयोजन यह है कि जब स्वयमें कोई ऐब है, वासना अज्ञानकी बनी हुई है तो दु:ख देने वाली तो अज्ञानवासना है, उसके कारण दुःखी रहा करता है। अत. लोकमें कहीं आनन्द नहीं है। शांतिका स्रोत है आनन्दका उपाय। एक वीतराग ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करना, यही आनन्दका उपाय है। खूब खोज लो कि जो सुखाभास होता है, उसमें भी पीछे पछतावा आता है, पर लोग सुख भोगनेके कालमें पछतावा महसूस नहीं करते। अत: तीनों लोकोंमें देवगति हो या नीचेका पाताललोक हो अथवा मध्यलोक हो, उसमें रहने वाले जितने जीव, उनके भोगसाधन, वैभव, इज्जत आदि समस्त बातों पर निगाह डाल लो। सुखदायी कुछ नहीं है, सारभूत कुछ नहीं है, यह मर्मकी बात, धर्मकी बात थोड़ासा बुद्धिका प्रयोग करें तो अनुभवमें उतर सकती है।

धर्म, अधर्मके फलकी प्रयोगसिद्धता— परको असार जानकर, विकल्प छोडकर निर्विकल्पभावसे क्षणभर ठहर जाए तो अनुभूत हो जाएगा कि आत्माका स्वरूप अनादि, अनन्त है। जैसे कोई चीज बनाते है तो प्रयोग करते हुए देखते हुए देखते जाते हैं। जैसे चाकूकी धार लगाते हैं तो बीच-बीचमें थोड़ी अगुली फेर कर देखते जाते हैं और वहा ज्ञान होता जाता है कि अभी धारमें थोड़ी कमी रह गयी, अब ठीक हो गयी अथवा रोटी सेकते जाते हैं और देखते जाते हैं कि इस तरफकी सिक गयी, उस तरफकी सिक गयी, अब फूल गयी, अभी इतनी कसर रह गयी, घुमाते जाते हैं, प्रयोग करते जाते हैं और समझते जाते हैं। इसी प्रकार धर्म और अधर्मकी बात प्रयोग करते जावो और समझते जावो, कोई कठिन बात नहीं है। विकल्पभाव दूर करो और धर्मका प्रयोग करके समझ लो कि सार और शांति यहा ही है या नहीं। अधर्मकी बातका प्रयोग तो किए ही हुए हैं अनादिसे और समझ रहे हैं। तीन लोकमें सार रागद्वेष रहित, विकाररहित जो शुद्ध ज्ञानस्वभाव है, वह स्वय कल्याणरूप है और

द्रव्य हैं उन सबमें शुद्धताकी महिमा पायी जाती है। इस कारण निष्पक्ष दृष्टिसे देखें तो जैसे परमाणु शुद्ध विलसित होता है इसी प्रकार सिद्ध जीव भी शुद्ध विलसित है। आकाशद्रव्य निरन्तर शुद्ध रहता है, जिसमें समस्त विश्वके पर्याय भी लोट रहे हैं, फिर भी आकाशमें विकार नहीं होता। ऐसे ही शुद्ध आत्माके स्थान पर अनेक विश्वके पदार्थ लोट रहे हैं, फिर भी उनमें विकार नहीं होता। और जब तक पुद्गल शुद्ध पुद्गल है वहां भी समस्त पदार्थ लोट रहे हैं फिर भी तो पुद्गलमें विकार नहीं होता है।

जीव व पुद्गलकी शुद्धतामे भविष्यत्का अन्तर—आत्माकी शुद्धता और पुद्गलकी शुद्धतामे यह अन्तर है कि आत्मा तो शुद्ध होकर फिर कभी अशुद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि आत्माके अशुद्ध होनेका कारण है राग द्वेष विभाव। रागद्वेष विभाव मूलत. एक बार नष्ट होने पर फिर उसका कार्यरूप कर्म नहीं आते और जब कर्म नहीं रहते तो कोई कार्यरूप रागद्वेष की सम्भावना नहीं रहती, किन्तु पद्गल परमाणुवोमे परस्परका जो द्रव्य-बंधन है वह परमाणुके स्निग्धरूक्षत्व गुणके कारण है, स्निग्ध रूक्षत्व गुण परमाणुमे शाश्वत रहता है और उनका अविभाग प्रतिच्छेद भी स्वय कर्म-वश हो रहा है परिणमनशीलताके कारण। तो जब बधनकी योग्यता होती है व दो गुण अधिक उनका योग मिलता है तो भी परमाणु आपसमें बंधन को प्राप्त हो जाता है तब यह अशुद्ध कहलाने लगता है, पर जब तक परमाणु शुद्ध है तब तक उसके परपरिणति नहीं है, शब्द भी नहीं है। ऐसे पुद्गल द्रव्यके पर्यायोंके प्रकरणमे यहा स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय रूपसे दो प्रकारकी पर्यायें बतायी गयी हैं।

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छयेण इदरेण।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो ववदेसो होइ खधस्स ॥२६॥

परमाणुमे पुद्गलद्रव्यपना—इस अधिकारमे पुद्गल द्रव्यका व्याख्यान चला आ रहा है, उस ही प्रकरणमे यह अतिम गाथा है। पुद्गलद्रव्य वास्तवमे अर्थात् निश्चय नयसे परमाणुओंको ही कहा जाता है, फिर व्यवहारसे स्कधमे भी यह पुद्गल द्रव्य है ऐसा व्यपदेश किया जाता है। स्कध द्रव्य नहीं है किन्तु पर्याय है और वह है समानजातीय द्रव्य पर्याय। जो स्वभावपर्यायात्मक है, शुद्धपर्यायवान् है ऐसे परमाणुमे ही शुद्धनयसे पुद्गल द्रव्यका व्यपदेश किया जाता है। और व्यवहारनयसे विभाव-पर्यायात्मक स्कंध पुद्गलका पुद्गलपना उपचारसे सिद्ध किया गया है। वैसे सबकी समझमे ये पुद्गल स्कंध ही पूरी तौरसे पदार्थ जच रहे हैं और परमाणुकी तो खबर ही नहीं है। परमाणुका वर्णन आए तो ऐसा लगता है कि ऐसा कहनेकी विधि है, किन्तु परमार्थसे परमाणु ही

पुद्गल द्रव्य है।

पुद्गलद्रव्यमें अस्तिकायत्वकी औपचारिकता—जहां अस्तिकायके भेद कहे गए हैं वहां अस्तिकाय ५ बताये गए—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। इनमें जीव तो सभी अस्तिकाय हैं, असंख्यातप्रदेशी हैं। जिसके प्रदेश अनेक हों उसे अस्तिकाय कहते हैं। धर्म, अधर्म और आकाश भी एक एक द्रव्य हैं और बराबर अस्तिकाय हैं, किन्तु पुद्गल द्रव्यमें परमार्थ द्रव्य तो परमाणु है, वह है एकप्रदेशी। एकप्रदेशीको अस्तिकाय नहीं कहा जाता है और स्कंध वास्तवमें द्रव्य नहीं है। इस कारण पुद्गल परमार्थसे ऐसे एक बंधन रूप स्कंध हो जाते हैं कि फिर उसकी ढाल चाल सब न्यारी हो जाती है। क्या परमाणु चलाया जा सकता है? नहीं, किन्तु परमाणुका पुञ्ज स्कंध बन जाय तो स्कंध जलता भी है, गलता भी है, उठाया भी जाता है। जो बातें परमाणुमें नहीं ली जा सकती हैं वे सब बातें स्कंधमें स्पष्ट दिखती हैं। इस कारण पुद्गल द्रव्य को उपचारसे अस्तिकाय कहते हैं।

पुद्गलशब्दका व्युत्पत्त्यर्थ और अन्वर्थत्व—पुद्गलका अर्थ है जो पूरे और गले, मिले और बिछुड़े। मिलना, बिछुड़ना अन्य द्रव्यमें सम्भव नहीं है। जैसे पुद्गल परमाणु बहुतसे मिलकर स्कंध बन जाते हैं ऐसे ही क्या कभी दो जीव मिलकर एक जीव हुए? बहुत ही घनिष्ट प्रीति हो पर वस्तुस्वरूपका उल्लंघन कैसे किया जा सकता है? दो जीव मिलकर एक कभी नहीं हो सकते हैं। मोही जीव चाहता है कि हम और ये दो न्यारे-न्यारे क्यों रहें, मिलकर एक पिण्ड बन जाएँ, पर क्या दो जीव कभी एक बन सकते हैं? नहीं बन सकते। केवल पुद्गल ही ऐसे हैं जो बन्धनबद्ध होकर स्कन्ध होते हैं। सत्वकी दृष्टिसे तो वे भी एक नहीं बनते किन्तु ऐसा विशिष्ट बंधन हो जाता कि वह एक हो जाता है और व्यवहार में भी देख लो कई चीजें हैं तो सबका एक व्यवहार होता है, ऐसे पुद्गल को उपचारसे अस्तिकाय कहा है। उसका यह कारण है कि निश्चयसे तो परमाणु पुद्गलद्रव्य है और व्यवहारसे स्कंधको भी पुद्गल द्रव्यका व्यपदेश किया जाता है।

पुद्गलद्रव्यके विवरणका प्रयोजन—इस अजीवाधिकारके प्रकरणमें पुद्गल द्रव्यको न संक्षेपसे, न विस्तारसे किन्तु मध्यम पद्धतिसे आचार्य से आचार्यदेवने वर्णन किया है। पुद्गलका भी रंग ढंग जानना कल्या-णार्थी जीवोंको आवश्यक है और वह इस रूपमें आवश्यक है कि हमें जिससे निवृत्त होना है, हटना है उसका भी परिज्ञान चाहिए। सो समस्त तत्त्वार्थ समूहको जानकर कर्तव्य यह हो जाता है कि समस्त परद्रव्योंको

चाहे वे चेतन हों अथवा अचेतन हों उनको छोड़ना चाहिए, और परम-तत्त्व जो चैतन्य चमत्कार मात्र है, समस्त परद्रव्योंसे विविक्त है उसे निर्विकल्प समाधिमें रहकर धारण करना चाहिए। जिनदेवके शासनमें यह बात प्रमुख बतायी गयी है कि देखो भाई जीव अन्य हैं, पुद्गल अन्य हैं, इन समस्त पुद्गलोंसे उपयोग हटाकर जिस शरीरके बन्धनमें बँध रहा है उस शरीरको भी न सोचे और केवल ज्ञानज्योतिका चिंतन करे तो क्या ऐसा किया नहीं जा सकता है।

शुद्धोपयोगीके शुद्धात्मत्व—भैया! इस ज्ञानमय तत्त्वमें बड़ी विलक्षण कला है, बन्धनकी अवस्थामें भी यह उपयोग बंधनको नहीं समझ रहा है, बंधनमें नहीं पड रहा है किन्तु शुद्ध आत्माका जो ज्ञायकस्वरूप है, अपने ही सत्त्वके कारण जो सहजस्वभाव है उस स्वभावको ही जान रहा है तो ऐसे उपयोगमें रहने वाले आत्मा को शुद्ध बताया जाता है। वह शुद्ध आत्मा है। जैसे कोई साधु महाराज मिर्च ज्यादा खाते हैं तो उनका नाम कोई मिर्च महाराज रखले, या जिसकी जिसमें रुचि होती है वह नाम रख लेता है तो जिसमें उपयोग बना हुआ है वह नाम व्यवहारमें भी लोग कह डालते हैं। यहां तो जिस ओर उपयोग बना है बस आत्मा उस रूप है। आत्माका लक्षण भी उपयोग है और उपयोगमें बस रहे हुए स्वभाव बाह्य विभाव भी विभावरूप बन रहे हैं, और उपयोगमें बस रहा हुआ शुद्धज्ञायक स्वरूप हो तो वह शुद्ध आत्मा है।

शुद्धात्मत्वकी पद्धति—भैया! परद्रव्यका निरूपण करने वाले व्यव-हारनयका विरोध नहीं करके और स्व द्रव्यका निरूपण करने वाले निश्चय का आलम्बन करके मोहको दूर करने वाला ज्ञानी संत अब परको अप-नानेकी सामर्थ्य रख नहीं रहा क्योंकि परको पर जान लिया। कोई भावतः परको पर व निजको निज मान सके तो परद्रव्यसे हो जाती है उपेक्षा और स्वद्रव्यमें ही लग जाता है उपयोग। ऐसी स्थितिमें शुद्ध आत्माका जो उपयोग कर रहा है वह तो शुद्ध आत्मा है, यह सब उपयोगकी ओरसे देखा जा रहा है। आत्मद्रव्यके अगल बगलका यहां वर्णन नहीं है। उपयोग जिसको ग्रहण किए हैं तो उपयोगात्मक आत्मा वही है जो कुछ उसके घरमें आए।

निष्पन्नयोगीका साम्यभाव—बहुत दृढ़तर जिसे शुद्ध अंतस्तत्त्वका अभ्यास हो जाता है उसको तो यह भी कल्पना मात्र जंचती है कि पुद्गल अचेतन है और जीव चेतन है। जैसे जीव जीवको जीवोंमें साधारणतया पाये जाने वाले चैतन्यगुणकी दृष्टिमें देखता है तो क्या नजर आता है कि चाहे संसारी जीव हो, और चाहे मुक्त जीव हो सब एक समान हैं। ऐसा

ज्ञान किया जाता है कि नही ? और, जब जीव पुद्गल धर्मादिक सभी द्रव्य उन सबको एक नजरमे ले और उस दृष्टिसे देखा जाय सब द्रव्योंमे सामान्य गुण पाया जाता है तो उस दृष्टिसे देखने पर क्या सब द्रव्य एक-समान न नजर आयेगे ? क्या वहां यह चेतन है यह अचेतन है, यह भेद विदित होगा। तो चेतन और अचेतन भी एक कल्पना है। अब इस आशयको पकड़ें, बहुत मर्मकी बात यहा कही जा रही है।

निष्पन्नयोगीकी दृष्टिका प्रकृष्ट व प्रकृष्टतर विकास—जैसे सब जीवो को एक चैतन्यस्वभावके नातेसे जब निरखा जा रहा है तो क्या उस दृष्टि से यह संसार है यह मुक्त है, यह भेद आता है ? नही आता। इसी प्रकार सब द्रव्योंसे सब द्रव्योंमे पाया जाने वाला जो सत्त्वगुण है केवल उस सत्त्व गुणकी दृष्टिसे निरखा जाय तो क्या वहां जीव चेतन है पुद्गल अचेतन है, यह भेद निरखा जा सकता है ? तो जैसे सब जीवोमे चैतन्य गुणकी निगाहसे देखना एक व्यापक और उदार दृष्टि है ऐसे ही सब द्रव्यो को सब द्रव्योमें साधारणतया पाये जाने वाले साधारण गुणकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह दृष्टिव्यापक हैं और उदार हैं। इस ही दृष्टिसे मूलमे एकांत नियम बनाकर जिसने पूर्ण वस्तुस्वरूप कायम किया है उसके मतमे यह सारा विश्व ब्रह्म रूप है। किसीका किसीसे कोई अन्तर नही है। सभी ब्रह्मस्वरूप हैं। इस ब्रह्मका अर्थ सर्व पदार्थोंमे साधारणतया पाये जाने वाला सत्त्व गुणरूप है। तो उस दृष्टिको कायम रखकर सब कुछ एक सद् ब्रह्म है, यह बात रंच गलत नही है, पर व्यवस्था और व्यवहार पुरुषार्थ आगेका काम यह सब केवल इस दृष्टि पर नहीं बन सकता है।

पदार्थकी साधारणासाधारणात्मकता—भैया ! सर्व प्रकार जान ले फिर जिस चाहो दृष्टिको मुख्य करके विलास करे उसमे कोई हानि नही है, पर प्रत्येक वस्तुका स्वरूप तो समझमे आना चाहिए। यद्यपि सब पदार्थ जाति अपेक्षा एक हैं, सत् रूप हैं फिर भी वस्तु उसे कहते है जिसमे अर्थक्रिया होती हो अर्थात् परिणमन होता हो। तो अब इस लक्षणको घटित करलो। निज निज स्वरूपास्तित्त्वमे रहने वाले वस्तुको मना करके एक सद्ब्रह्मका ही एकांत हो तो भूखो मरना पड़ेगा। न दूध मिलेगा और न अन्न मिलेगा। कहां से दूध लावोगे ? सब सद् ब्रह्म ही है क्यों एक गायसे ही दूध निकालते हो सब सद्एक ब्रह्म हैं, तो व्यक्तिमे अर्थक्रिया होती है और जो अर्थक्रिया जितनेमे हो जिससे बाहर न हो वह एक द्रव्य कहलाता है। इस दृष्टिसे यह बात सर्वप्रथम मालूम पडेगी कि अनन्त जीव है, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्मद्रव्य व असंख्यात काल द्रव्य है, फिर अब व्यापक दृष्टि बनाये, उदार दृष्टि बनाएँ, यह सब आपकी प्रगति है। मूलतत्त्व को यदि

मना कर दिया तो तत्त्वकी खोजमें वन-वनमें भटकने जैसा श्रम होगा चीज एक न मिलेगी।

अभ्यस्त और निष्पन्न साधना—जैसे प्राथमिक जनोंमें यह भेद रहता है कि वह मुक्त जीव है, यह संसार जीव है, यह पशु पक्षी है, यह मनुष्य है पर निजतत्त्वका दृढ़तर अभ्यास करनेके लिए उस व्यक्ति को अर्थात निष्पन्न योगमें फिर यह भेद नजर नहीं आता प्रत्युत सब जीव चिदानन्द स्वरूप दृष्ट होते हैं। अब इससे और आगे बढ़ो। अब जीव और पुद्गल इन दोनोंमे जो एक साधारण गुण है अस्तित्त्वगुण, उस दृष्टिसे जब निहारा जाता है तब वहा चेतन और अचेतनकी कल्पना नहीं ठहरती उसकी अपेक्षा यह प्राथमिक अवस्था है। जहा यह जंच रहा हो कि पुद्गल तो अचेतन है और जीव चेतन है पर इस प्राथमिक अवस्थासे आगे बढ़कर जहा साधारण धर्मदर्शनविषयक निष्पन्नयोग होता है वहा सब कुछ एक सत् रूप उसको ज्ञात है। चेतन और अचेतन का भेद भी वहा नहीं रहता है। यह साधनके एक परमसीमाकी बात कही जा रही है। अनिष्पन्न योगीको अर्थात् जो एक व्यापक उदार स्वभाव दृष्टिमें दृढ़ उपयोगी नहीं होता है उसको तो ये सब बातें कर्तव्यमे आती हैं पर वस्तुत्व के नातेसे पुद्गल और जीवको देखा जाय तो वहा यह पक्ष नहीं होना चाहिए कि यह मेरी जातिका है और यह दूसरी जातिका है। जब केवल सत्त्व दृष्टि है तब वहां पुद्गल और जीव ये दोनो भिन्न जातिके ज्ञात नहीं होते। अब उनकी एक ही जाति है। वह क्या? पदार्थत्व, सत्त्व।

निष्पन्नयोगीकी निर्विकल्पता— यह शरीर अचेतन है, पुद्गल कायरूप है और परमात्मतत्त्व सचेतन है, वह शुभ्र ज्ञायकस्वरूप है फिर भी अति निष्पन्न योगीको परमात्मतत्त्वमें रागभाव नहीं होता और अचेतन पुद्गलमे रोषभाव नहीं होता, ऐसे साधनाशील यतियोंकी उच्च शुद्ध दशा होती है। जैसे यहासे कोई अमेरिका रूस कहीं जाय तो वह पुरुष जब भिण्डसे निकलकर ग्वालियर पहुचा और उससे कोई पूछे कि आप कहासे आ रहे? तो वह कहेगा कि भिण्ड जिलेसे आ रहे हैं और यहाके बाद जब कानपुर पहुचा और वहां कोई पूछे कि आप कहासे आ रहे हैं? तो वह कहेगा कि मध्यप्रदेश से आ रहे हैं, और मान लो यहासे चलकर विदेश पहुचे और वहा कोई पूछे तो वह कहेगा कि हम भारतसे आ रहे हैं। तो जैसे-जैसे उसका भ्रमण व्यापक बना तैसे-तैसे उसकी दृष्टि व्यापक हुई, इसी तरह यह पूछा जाय कि आप कौन हैं? तो कोई बतायेगा कि हम अमुक हैं, वैश्य हैं। कदाचित् और अधिक व्यापक दृष्टि बनायी तो कहेगा कि हम मनुष्य हैं, और अधिक व्यापक दृष्टि बनायी

तो कहेगा कि हम जीव हैं। इससे भी और अधिक व्यापकता लायें जिसमें कि सब पदार्थ एक स्वरूपमे आ जायें तो कहेगा कि हम एक सत् पदार्थ हैं।

विलक्षणता न देखने पर रोष तोषका अनवकाश—भैया ! जब कहा कि हम वैश्य हैं तो वैश्य वशमे इसकी समानताकी बुद्धि रही अब उनमे किसी से रोष व तोष न करेगे। जब यो कहा कि हम मनुष्य हैं तो मनुष्योंमें व्यक्तिगत इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होनेसे रोष व तोष नही करना और जब उसका यह भाव हुआ कि मै जीव हूं तो जीवमें उपयोग लगाकर समझ रहा हो तो जीवमे किसी एकसे किसी दूसरे से रोष तोष न करेगा। और कभी इस विषयमें आए कि हम तो सत्रूप एक पदार्थ हैं तो सत्भूत जितने पदार्थ हैं उन पदार्थोंमे किसी एकमे रोष करना किसी एकमे तोष करना ये बातें उससे न बनेंगी। तो इतनी अधिक व्यापक दृष्टिसे यह ज्ञानी सोच रहा है चूंकि जीव और पुद्गल इन दोनोका यहां वर्णन है और दोनों द्रव्योंमें समान रूपसे पाये जाने वाले लक्षणोंकी दृष्टि लगायी सो भगवानमें क्या तोष करना और पुद्गलमें क्या रोष करना, ये हैं एक सत्त्वकी दृष्टि रखने वाले निष्पन्न योगकी बातें।

परविविक्त निजतत्त्वके अभिमुख होनेका उद्यम—जीव और पुद्गलका गुण और पर्यायोसे वर्णन करनेके बाद ऐसी व्यापक दृष्टिमे उतर कर जहां जीव और पुद्गलमे भी कुछ कल्पना न की जा सके, उस दृष्टिमें लाकर अब आचार्यदेव इस पुद्गलद्रव्यके वर्णन को यहां समाप्त कर रहे हैं। कल्याणकी दृष्टिमे व्यावहारिकता की ओर कुछ कदम बढ़ाये, इस दृष्टिमे हमे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीव जुदा है और पुद्गल जुदा है, इतनी बात जानकर पुद्गलसे हटकर एक शुद्ध ज्ञायकस्वरूपमे हमे उपयोगी होना चाहिए। मुझे करनेको काम यह है। जब इसमे निष्पन्न हो जाये तो फिर उस योगीके फिर और उत्कृष्ट दशा होती है कि उसकी दृष्टिमे जीव और पुद्गलमे भी भेद नहीं रहता। या तो मोही जीवको जीव और पुद्गलमें भेद नही है या अति उच्च निष्पन्न योगीको जीव और पुद्गलमे भेद नहीं है। इस प्रकार यहां इस पुद्गल द्रव्यका वर्णन समाप्त होता है।

अजीवाधिकारमें पुद्गलद्रव्यका वर्णन करके अब धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्यका एक गाथामे सक्षेपसे वर्णन करते हैं।

गमणणिमित्त धम्मधम्मं ठिदि जीवपुग्गलाणं च।
अवगहण आयासं जीवादीसव्वदव्वाण ॥३०॥

धर्मद्रव्य—जो जीव और पुद्गल द्रव्यके गमनमें निमित्तभूत है उसे धर्मद्रव्य कहते है और जो जीव पुद्गलके ठहरनेमे निमित्तभूत है उसे

अधर्मद्रव्य कहते हैं तथा जो जीवादिक समस्त द्रव्योंकी अवगाहनाका हेतुभूत है उसे आकाश कहते हैं। यह धर्मद्रव्य समस्त लोकाकाशमें तिल में तैलकी तरह सर्वप्रदेशोंमें व्यापक है और जैसे बावड़ीका जल स्वयं नहीं चल रहा किन्तु वहां बसने वाले मछली और कछुवेके गमनका निमित्तभूत है, इस ही प्रकार यह धर्मद्रव्य स्वयं गति नहीं करता है फिर भी गतिक्रिया परिणत जीव पुद्गलके गमनमें निमित्तभूत है। यह धर्म द्रव्य कोई स्वभावगतिको ही करे उसमे निमित्तभूत है और कोई विभाव गतिके कार्य करे उसमे भी निमित्तभूत है यह अन्य पदार्थोंके स्वभाव और विभाव क्रियावोंके भेदसे कहीं दो प्रकारकी निमित्तता नहीं हो जाती है किन्तु गमन मात्रमे निमित्तभूत यह धर्मद्रव्य है।

जीवकी स्वभावगतिमे निमित्तता—जब यह जीव शुद्धोपयोगकी भावना के प्रसादसे अपने आपके शुद्ध स्वरूपमे अपना आलम्बन पुष्ट करता है तो उस शुद्ध परिणमनका निमित्त पाकर ये द्रव्यकर्म स्वय अपनी परिणतिसे विनाशको प्राप्त होते हैं और उस समय इस जीवके समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं अथवा यो कहो ५ प्रकारके संसार द्रव्य परिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन और भावपरिवर्तन रूप का अभाव हो जाता है ऐसे शुद्ध विकाशके अवसरमें यह जीव एक समयमें ही यहासे एकदम सीधा ऊपर चला जाता है जहा तक लोकाकाश है अथवा धर्मद्रव्य अस्तिकाय है। यह शुद्धआत्मा शुद्ध गतिसे तीनलोक के शिखर तक पहुचता है।

शुद्धात्माका स्थायी स्थान—भैया! परमात्माका ध्रुव निवास ऊपर निवास ऊपर है, जहा तक लोक है वहा तक गमन करता है, अंतमें अवस्थित रह जाता है। यहां भी लोग जब परमात्माकी याद करते हैं तो अपना सिर ऊँचा ही तो उठाकर करते हैं किसीको नीचे झुककर भगवान की याद करता हुआ क्या देखा है? जब जो परमात्माकी याद करता है वह ऊपर ही निगाह करके देखता है। और फिर जैसे तूँबीमें मिट्टी भरी हो और वह पानीमे पड़ी हो तो पानीके नीचे नीचे ही रहा करती है। वह मिट्टी जब खिर जाती है तब तूँबी वहा नहीं ठहर पाती है जब मिट्टी गलकर बह गयी तो तूँबी स्वभावसे जलके ऊपर पहुच जाती है। ऐसे ही द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मका मल दूर होने पर आत्मा लोकान्तमे जाता है।

जीवकी स्वभावगतिका साधन—इस स्वच्छ चित्चमत्कार मात्र आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मका मिट्टीका लेप पड़ा हुआ है। जिस बोझ से यह जीव संसारमे दबा है। इस जीवको कभी चेत आए, स्वरूपकी परख हो और इस ज्ञानस्वरूपकी भावना बनाएँ तो उसके प्रसादसे

भगवान हो गया। शरीर बना हुआ है, विहार चल रहा है, दिव्य ध्वनि भी होती है, यहाके लोगोंके उनका दर्शन होता है। ऐसा सयोगकेवली भगवान बहुत दिनोंके पश्चात् जब उनका ससार छूटता केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रह जाता है तब वह अयोगकेवली हो जाता है। उस गुणस्थान का समय ५ ह्रस्व अक्षर बोलनेके बराबर है। स्वरोंमें ह्रस्व ५ ही होते हैं। इन ह्रस्व अक्षरोंको जल्दी बोलनेमें जितना समय लगता है उतने समयमें वह अयोगकेवली भगवान गुण स्थानको तजकर, शरीरसे अलग होकर लोकके शिखर पर विराजमान् हो जाता है। यहा भगवानके स्वभावगति की क्रियाका परिणमन है। उनका पचम गतिको जानेमें अर्थात् सिद्ध होनेमें जो स्वभाव गमन होता है उस गमनका हेतुभूत जो द्रव्य है उसका नाम है धर्मद्रव्य।

विभावगतिके निमित्तका विवरण—संसारी जीवोंके विभाव गति क्रिया होती है जो कि मरनेके बाद उपक्रम करके सहित होता है उस क्रियाका भी हेतुभूत धर्मद्रव्य है और जीवन अवस्थामें कैसा भी यह गमन कर, तिरछा, टेढा गोल ऐसे विषम गमनका भी कारणभूत यह धर्मद्रव्य है, जैसे पानी पनालियोंके गमनमे कारण होता है इस ही प्रकार जीव और पुद्गलके गमनमें कारण धर्मद्रव्य होता है। यह धर्मद्रव्य रूप, रस, गध, स्पर्श रहित है, अमूर्त है। इसमें ८ प्रकारका न स्पर्श है, न ५ प्रकारका वर्ण है, न ५ प्रकारका रस है और न दोनों प्रकारका गध है। आकाशवत् अमूर्त सूक्ष्म किन्तु लोकाकाशप्रमाण व्यापक यह धर्मद्रव्य है, यह अपने आपके द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्वगुणके कारण अपने आपमे निरन्तर परिणमता रहता है। उसका आकार वही है जो लोकका आकार है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य व अलोकाकाशके आकारकी समानता—लोकका आकार इसी प्रकारका बताया गया है कि जैसे मानो ७ पुरुष एकसे कदके

साधना है अपनी इन्द्रियोंपर विजय किए रहना। पचेन्द्रियके विषयोंमें यह समस्त लोक अपने मार्गसे च्युत होकर भटक रहा है। उन इन्द्रियों पर विजय करना सबसे पहिली फतह है।

रसनेन्द्रियविजय—भैया! जरा कहने मे तो आसान लगता है कि क्या बात है, न खाये रसीले, चटपटे भोजन आखिर गलेके नीचे उतरनेके बाद घाटी नीचे माटी की हालत हो जाती है। एक सेकेण्डका स्वाद न आवे तो क्या बिगड़ता है? एक सेकेण्डके उस स्वादकी प्रबलतामें कितने ही रोग कितने ही दोष ये अपने आपमें मोल ले लेते हैं। सीधा सात्विक खावो और रोगसे बचे रहो तो कौनसी अटक पड़ती है? स्वादिष्ट चाय पी ली तो इसमे कौनसा लाभ मिलता है? हां नहीं किया जायेगा पर ज्यों ही विषय साधन समक्ष आते हैं तो यह मोही जीव उनको भोगे बिना रह नही पाता है। कितना व्यामोह है ससारी प्राणीका।

चक्षुरिन्द्रियविजय—एक रसनाइन्द्रिय की ही बात नहीं है—जो बहुत दूर की इन्द्रिय है, जिसका विषयोंसे सम्बन्ध भी नहीं बनता ऐसे चक्षुरिन्द्रिय विषयका भोग क्या इसके कम रोगकी बात है। अरे न देखें बाहरमें किसी चीज को तो कौनसी अटक हो जाती है, कौनसा घाटा पड़ जाता है, पर सुन्दर रूपकी बात तो दूर रहो, कोई चीज सामने से निकल जाय, चाहे सड़कसे रद्दी ढेला ही निकलने लगे, लो आंखे वहां पहुंच ही जाती हैं। कैसी यह व्यर्थकी व्याधि लगी हुई है। न देखा रूप, न देखा बाहर कुछ तो आत्मामें कौनसी हानि होती है। पर नहीं रहा जाता है। जबकि, देखो रसना और नेत्र इन दोनोको वशमे करने के लिए प्राकृतिक ढक्कन लगे हुए हैं। मुँहमे दो ओठोंका ढक्कन लगा है, इनको वद कर लिया लो इस रसना विषयकका ढक्कन लग गया। इसी तरह नेत्र के दोनों ढक्कन वंद कर लिया तो सारी आफत मिट गयी। मगर मोहके रोगमें यह जीव इन ढक्कनोको वंद नही कर सकता है।

शेषेन्द्रियविजय—और इन दो इन्द्रियोकी ही बात नहीं है, कान भी कैसा खडे रहा करते हैं, नाक भी कैसा सदा तैयार रहा करती है गंध लेनेके लिए। इसका द्वार तो कभी वद ही नहीं होता। नाकका द्वार सदा खुला रहता है। कानका द्वार भी सदा खुला रहता है। खूब शब्द सुनते स्पर्शन कामभावका विषय तो मुग्धतापूर्ण है। तो ऐसे इन विषयोंके वशमें होकर यह जीव अपनी बरबादी किए जा रहा है। उनसे बचनेका जिसने यत्न किया है वे जितेन्द्रिय हो जाते हैं।

इन्द्रियविजय धर्ममार्गका प्रथम कदम—धर्म मार्गमें सबसे पहिले जो कदम उठता है चारित्रकेरूपमें वह इन्द्रिय विजयताका उठता है और

साधारण लोग तकके भी धर्मकी बात मनमें आती है तो भोजनके त्यागकी बात पहिले कर ली जाती है। अमुक रस आज नहीं खाना है, आज एक बार ही खाना है या इतना-इतना त्याग सहित खाना है। सबसे पहिले तो भोजन पर ही दृष्टि जाती है। धर्ममार्गमें और बात भी देखो जब तक जितेन्द्रियता नहीं प्रकट होती है तब तक परिणामोंमें विषय और कषायका अभाव नहीं हो सकता। सबसे पहिले इन्द्रिय विषय पर विजय किया जाता है तत्पश्चात् कषायोंके दूर करनेमें सफलता होती है। और जब कषाय दूर हो जायें तब फिर यह निष्कषाय होनेके बाद सयोगकेवली भगवान बनता है।

अयोगकेवली गुणस्थानके पश्चात् जीवकी स्वभावगति—वीतराग आत्मा भगवान हो गया। शरीर बना हुआ है, विहार चल रहा है, दिव्य ध्वनि भी होती है, यहाके लोगोंके उनका दर्शन होता है। ऐसा सयोगकेवली भगवान बहुत दिनोंके पश्चात् जब उनका ससार छूटता केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष रह जाता है तब वह अयोगकेवली हो जाता है। उस गुणस्थान का समय ५ ह्रस्व अक्षर बोलनेके बराबर है। स्वरोंमें ह्रस्व ५ ही होते हैं। इन ह्रस्व अक्षरोंको जल्दी बोलनेमें जितना समय लगता है उतने समयमें वह अयोगकेवली भगवान गुण स्थानको तजकर, शरीरसे अलग होकर लोकके शिखर पर विराजमान् हो जाता है। यहा भगवानके स्वभावगति की क्रियाका परिणमन है। उनका पचम गतिको जानेमें अर्थात् सिद्ध होनेमें जो स्वभाव गमन होता है उस गमनका हेतुभूत जो द्रव्य है उसका नाम है धर्मद्रव्य।

विभावगतिके निमित्तका विवरण—संसारी जीवोंके विभाव गति क्रिया होती है जो कि मरनेके बाद उपक्रम करके सहित होता है उस क्रियाका भी हेतुभूत धर्मद्रव्य है और जीवन अवस्थामें कैसा भी यह गमन कर, तिरछा, टेढा गोल ऐसे विषम गमनका भी कारणभूत यह धर्मद्रव्य है, जैसे पानी पनालियोंके गमनमें कारण होता है इस ही प्रकार जीव और पुद्गलके गमनमें कारण धर्मद्रव्य होता है। यह धर्मद्रव्य रूप, रस, गध, स्पर्श रहित है, अमूर्त है। इसमें ८ प्रकारका न स्पर्श है, न ५ प्रकारका वर्ण है, न ५ प्रकारका रस है और न दोनो प्रकारका गध है। आकाशवत् अमूर्त सूक्ष्म किन्तु लोकाकाशप्रमाण व्यापक यह धर्मद्रव्य है, यह अपने आपके द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्वगुणके कारण अपने आपमें निरन्तर परिणमता रहता है। उसका आकार वही है जो लोकका आकार है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य व अलोकाकाशके आकारकी समानता—लोकका आकार इसी प्रकारका बताया गया है कि जैसे मानो ७ पुरुष एकसे कदके

साधना है अपनी इन्द्रियोंपर विजय किए रहना। पचेन्द्रियके विषयोंमें यह समस्त लोक अपने मार्गसे च्युत होकर भटक रहा है। उन इन्द्रियों पर विजय करना सबसे पहिली फतह है।

रसनेन्द्रियविजय—भैया! जरा कहने मे तो आसान लगता है कि क्या बात है, न खाये रसीले, चटपटे भोजन आखिर गलेके नीचे उतरनेके बाद घाटी नीचे माटी की हालत हो जाती है। एक सेकेण्डका स्वाद न आवे तो क्या बिगड़ता है? एक सेकेण्डके उस स्वादकी प्रबलतामें कितने ही रोग कितने ही दोष ये अपने आपमे मोल ले लेते हैं। सीधा सात्विक खावो और रोगसे बचे रहो तो कौनसी अटक पड़ती है? स्वादिष्ट चाय पी ली तो इसमें कौनसा लाभ मिलता है? हां नही किया जायेगा पर ज्यों ही विषय साधन समक्ष आते हैं तो यह मोही जीव उनको भोगे बिना रह नहीं पाता है। कितना व्यामोह है संसारी प्राणीका।

चक्षुरिन्द्रियविजय—एक रसनाइन्द्रिय की ही बात नही है—जो बहुत दूर की इन्द्रिय है, जिसका विषयोंसे सम्बन्ध भी नहीं बनता ऐसे चक्षुरिन्द्रिय विषयका भोग क्या इसके कम रोगकी बात है। अरे न देखे बाहरमे किसी चीज को तो कौनसी अटक हो जाती है, कौनसा घाटा पड़ जाता है, पर सुन्दर रूपकी बात तो दूर रहो, कोई चीज सामने से निकल जाय, चाहे सड़कसे रद्दी ढेला ही निकलने लगे, लो आखे वहां पहुंच ही जाती हैं। कैसी यह व्यर्थकी व्याधि लगी हुई है। न देखा रूप, न देखा बाहर कुछ तो आत्मामें कौनसी हानि होती है। पर नहीं रहा जाता है। जबकि, देखो रसना और नेत्र इन दोनोको वशमे करने के लिए प्राकृतिक ढक्कन लगे हुए हैं। मुँहमे दो ओठोंका ढक्कन लगा है, इनको बंद कर लिया लो इस रसना विषयकका ढक्कन लग गया। इसी तरह नेत्र के दोनों ढक्कन बंद कर लिया तो सारी आफत मिट गयी। मगर मोहके रोगमे यह जीव इन ढक्कनोको बंद नही कर सकता है।

शेषेन्द्रियविजय—और इन दो इन्द्रियोंकी ही बात नहीं है, कान भी कैसा खडे रहा करते हैं, नाक भी कैसा सदा तैयार रहा करती है गंध लेनेके लिए। इसका द्वार तो कभी बद ही नहीं होता। नाकका द्वार सदा खुला रहता है। कानका द्वार भी सदा खुला रहता है। खूब शब्द सुनते स्पर्शन कामभावका विषय तो मुग्धतापूर्ण है। तो ऐसे इन विषयोंके वशमे होकर यह जीव अपनी बरबादी किए जा रहा है। उनसे बचनेका जिसने यत्न किया है वे जितेन्द्रिय हो जाते हैं।

इन्द्रियविजय धर्ममार्गका प्रथम कदम—धर्म मार्गमे सबसे पहिले जो कदम उठता है चारित्रकेरूपमें वह इन्द्रिय विजयताका उठता है और

द्रव्य कर्म, भावकर्म और नोकर्म ये मल दूर हो जाते हैं और उस समय यह जीव एक समयको लोकके अंत तक पहुंच जाता है। उस समय स्वभाव गति क्रियामे निमित्त यह धर्म द्रव्य हैं, वह स्थिति एक मुक्त अवस्थामे है। सर्व सकट जहा छूट गए, कर्म भी दूर हो गए, ऐसी मोक्षकी स्थिति इस प्रभुकी होती है।

मोहका नृत्य—भैया! कैसा इस जगतमे मोहका नृत्य है कि यह जीव दु खी भी होता जाता है और उसी मोह और रागको दृढ पकड़ता जाता है। जिसके द्वारा जो तकलीफ हुई उस ही का बढावा दिया जा रहा है। जैसे लाल मिर्चका खाने वाला जो खूब लालमिर्च खानेका शौकीन हो वह सीसी करता जाता हैं, आखोसे आंसू भी गिरते जाते हैं फिर भी मागता है कि और दो। आसक्ति है। ऐसे ही इस ससारके विषयोंके अनुरागमें, मोहमें, अपनानेमे इस जीवमे आकुलताएँ क्षोभ समाये जा रहे हैं और उन आकुलावोंको सहन न कर सकनेके कारण उन आकुलतावोंके कारणभूत उन ही विषयसाधनोंका ये जीव आह्वान करते जाते हैं। पर यह बात ध्रुव सत्य है कि संसारमें सर्वत्र क्लेश ही क्लेश हैं। इनसे यदि बचना है तो अपने आपके सहज स्वभावका परिचय करना ही होगा और यही स्वरूपाचरण जो आत्मदर्शनके अवसरमे प्राप्त हुआ है यही वृद्धिगत होकर परमात्मस्वरूप तक पहुचा देता है।

शुद्धात्माकी अनुश्रेणि ऊर्ध्वगति—सिद्ध प्रभु ६ अपक्रमसे अब रहित हैं। जहासे यह मनुष्य मुक्त हुआ है उसही के ठीक सीधमे आकाशका एक प्रदेश भी टेढ़ा नहीं जाता है किन्तु एकदम सीधमें यह शुद्धात्मा गमन करता है। यह ससारी जीव मरनेके बाद ६ ओरसे गमन किया करता है। पूरबसे पश्चिमको, पश्चिमसे पूरबको, पश्चिमसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण, ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर। इस तरह ६ अपक्रमणोंमें नवीन देह धारण करनेके लिये गमन किया करता है और जीवनमें तो यह जीव इतनी भी सीध नहीं रखता है अर्थात् गोल चल दे, तिरछा चल दे, जैसा चाहे चल दे किन्तु सिद्ध भगवान कर्मोंसे मुक्त होते ही एकदम सीधे ऋजुगतिसे मोक्ष निवासमें पहुच जाते हैं।

प्रभुताकी व्यक्तिकी व पहिलेकी स्थितिया— मुक्तिसे पहिले भगवान अयोग केवली रहते हैं और इससे पहिले सयोग केवली हुआ करते हैं। इससे पहिले साधनाकी अवस्थाएँ हुआ करती हैं और उन साधनोंकी अवस्थावोंसे पहिले यह प्रमाद अवस्थामे साधु रहता है, उससे पहिले कुछ भी हो अविरत सम्यग्दृष्टि रहे या देशव्रती श्रावक रहे स० संभव है। तो यह जीव अभ्यासबलसे सबसे पहिले जितेन्द्र बनता है, यह बहुत बड़ी

अधर्मद्रव्यका विवरण--अधर्मद्रव्यका भी यही हाल समझो। जो कुछ धर्मद्रव्यके विषयमें बताया गया है वही सब कुछ विशेषण अधर्मद्रव्यमें है। यहा केवल साधारण कार्यको निमित्ततामें ही अन्तर है कि धर्मद्रव्य तो जीव पुद्गलकी गतिमें कारण है किन्तु धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल की स्थितिमें कारण है विशेष गुणका अन्तर आ गया, उसको इस विशेष गुणकी मुख्यता न करना तो धर्म अधर्म परस्परमें एक समक्ष आता है वहा यह विश्लेषण करनेकी गुञ्जाइश नहीं रहती है। यो इस प्रकरणमें धर्मद्रव्य और धर्मद्रव्यका वर्णन किया गया है। जैसे धर्मास्तिकायके गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध होती है, ऐसे ही अधर्मद्रव्य भी गुणपर्यायसे शुद्ध रहता है। इन अमूर्त द्रव्योके गुण स्पष्ट नही जान सकते, विशेष अपेक्षित गुणके द्वारसे धर्म और अधर्मका मान कर सकते हैं।

आकाशका स्वरूप—आकाशद्रव्यका विशेष गुण है द्रव्योंको अवगाह देना, यह सब आपेक्षिक कथन चल रहा है। आकाशद्रव्य किसीको अवगाह देता फिरे, ऐसी उसकी कोई परिणति नहीं है, वह तो अपने अगुरुलघुत्व गुणके परिणमनसे परिणमता हुआ एक द्रव्य है पर उसके स्थानमे पदार्थ रहता है, इस कारण वह अवगाहका निमित्त है और उसे अवगाहनका हेतु कहा गया है। अवगाहन आदिमें समर्थ तो सभी द्रव्य हैं परमाणुकी जगह दूसरा परमाणु रह जाता है जीवके स्थानमे अनेक पुद्गल पडे हुए हैं। तो इस पदार्थमें भी अपने आपमें दूसरोको समा लेने की सामर्थ्य है पर ऐसा होते हुए भी स्थान तो आकाशमे ही है इसलिए अवगाहन का हेतु आकाशको कहा गया है।

लोकाकाश और अलोकाकाश –धर्म और अधर्मके शेष गुण आकाश के शेष गुणोंमे सदृश हैं अथवा जो साधारण गुण धर्म अधर्मका है वह ही आकाशमें है, जो आकाशमे है वह ही धर्म अधर्ममें है। लोकाकाश धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य एक समानका परिमाण है। पर अलोकाकाश इससे अधिक है अनन्तगुणा। आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। आकाशके दो भेद नहीं होते हैं किन्तु आकाशके जितने प्रदेशोमे समस्त द्रव्य ठहरने हैं उतनेका नाम लोकाकाश है और जहां केवल आकाश ही आकाश है उसका नाम अलोकाकाश है।

सर्वज्ञेयोंके जाननेका प्रयोजन-- भैया ! यह सब कुछ जान लो। जो गतिका कारण है वह धर्मद्रव्य है और जो स्थितिका कारण है वह अधर्म द्रव्य है। समस्त द्रव्योंको स्थान देनेमे प्रवीण आकाशद्रव्य है। इन सबको भली प्रकार द्रव्य रूपसे जान लो और जानकर कहीं उनमे प्रवेश नहीं करना है, उनमें उपयोग नहीं फँसाना है। जान लो ज्ञेयतत्त्व न जाना तो

एक वह अज्ञान अंधेरा है। ऐसी स्थितिमे ज्ञान प्रगतिका अवसर नहीं होता है।

अनात्मतत्त्वके जाननेकी आवश्यकता--ये सब पदार्थ तो अभी सम्बन्धित हैं, यह मैं आत्मा हू। इसमे क्यो मलिनता है, क्यो इसकी दुर्दशा है? उसमे निमित्त है उपाधि, उस उपाधिका वर्णन किया जाना चाहिए। ऐसे पुद्गलोंका वर्णन आवश्यक है। उपाधिका निमित्त पाकर बाह्यपदार्थों का आश्रय बनाकर ये रागद्वेषादिक हुआ करते हैं। सो बाह्य विषयोंका भी बोध कराना चाहिए। सो ऐसे पुद्गलोका भी वर्णन आयेगा। यह जीव द्रव्य डोलता है, गमन करता है, कहा तक गमन करता है? क्यो गमन करता है, अनेक प्रश्न उपस्थित होते है, उनका समाधान मिलता है धर्मद्रव्यका वर्णन होनेसे। यह चलकर ठहरता भी है और कहीं आखिरी सीमामे ठहर जाता है ऐसा समझनेके लिए अधर्मद्रव्यका वर्णन है और आकाशद्रव्य तो अमूर्त होता हुआ भी, न दिखता हुआ भी लोगोको परिचयमे हो रहा है। यह सब आकाश ही तो है, जहां पोल है, जहां हम रहते हैं वह आकाश है। हम कहां रहते हैं, उसका समाधान करनेको आकाशद्रव्यका वर्णन जानना। वस्तुत' प्रत्येक पदार्थ अपनी ही परिणति से परिणमता है और अपने ही प्रदेशमे उसका अवधान है। फिर भी बाह्य बात, विभावोकी बात बाह्य कटक ये सब जाननेसे ओझल नही किए जाते। इस कारण सभी द्रव्योका वर्णन जानना आवश्यक हो गया है।

परसे अलगाव व निजमे लगावका यत्न--जान लिया, पर जान करके मोक्षार्थी पुरुष सदा निजतत्त्वमे ही प्रवेश करे। जाननेकी बाते जाननेकी जगह हैं, पर करें क्या, कहा प्रवेश पाये? यह आत्महितके जाननेके लिए एक अनिवार्य बात हैं, हम अपने आपके जाननेमे रहते हैं तब आकुलता नहीं होती, क्योकि आकुलताका निर्माण किसी परविषयका आश्रय करके होता है। कोई मनुष्य किसी परको तो उपयोगमे न रखे और आकुलता करले, ऐसा नही हो सकता। कोई परविषय लक्ष्यमें रहता है, उपयोगमे रहता है तब हो आकुलता मच सकती है तो निराकुल होनेके लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परमे न फँसे और केवल निज शुद्ध ज्ञायक स्वरूपकी दृष्टि बनाए रहें।

आनन्दप्राप्तिका साधनभूत ज्ञान --आनन्द पानेका कितना सुगम उपाय है कि बाहरसे उपयोगनेत्रको बद किया जाय यह मै ज्ञान नहीं, स्वभाव मात्र स्वय तो हू ऐसी दृष्टि बनाए तो यह शीघ्र शांति प्राप्त कर लेता है। कितना व्यर्थका यह ऊधम है कि न परसे इस मुझमें कुछ आना है और न मुझसे किसी परमें कुछ जाना है, कोई वास्ता नहीं है। मै मैं हू, पर पर

है, फिर भी कितना बोझ इस जीवने अपने पर लादा है कि बोझकी वजह से यह कभी विश्राम नही ले पाता। यत्र तत्र दौड़ लगाये चला जाता है। बिना कारण यह अपने आपमे संक्लेश बनाए रहता है। सब विवरणोंका अर्थ यह है कि न कुछ परसे हममे परिणति आती है और न हमसे परमें कुछ जाता है। ये अपने घरके हैं, हम अपने घरके हैं, किन्तु परदृष्टि करके अपने आपसे कल्पनाएँ बनाकर यह दु:खी होता रहता है। यदि सब द्रव्यों को जानकर प्रवेश करना है तो अपने निजतत्त्वमे प्रवेश करना है। परका जानना परसे निवृत्त होनेके लिए किया जा रहा है। परमे फँसनेके लिए परका जानना नही किया जाता है। यहा तक अजीवाधिकारमे पुद्गल, धर्म, अधर्मका, वर्णन किया, अब शेष रहा जो कालद्रव्य है उसका वर्णन अगली गाथामे किया जा रहा है।

समयावलिभेदेण दु दुवियप्प अहव होइ तिवियप्प।
तीदो संखेज्जावलि हदसठाणप्पमाणं तु ॥३१॥

कालकी परमार्थ पर्याय व अल्पतम व्यवहारपर्याय—इस गाथामे व्यवहार कालका स्वरूप कहा है। कालद्रव्यकी पर्यायोका स्वरूप कहा जा रहा है। कालद्रव्यकी पर्याय वस्तुत: एक समय है। अब उन समयोंका सचय करके अर्थात् ज्ञानमे बहुतसे समयोके समूहको जोड़कर फिर अन्य भेद किया जाता है। कालके दो भेद बताए जा रहे है—समय और अवली। यद्यपि भेद बहुतसे हो जाते हैं पर परमार्थसे तो कालका भेद समय है और व्यवहारमे जब अपन चले, व्यवहार कालको जब उपयोगात्मक जाना तो उन सबमे सबसे छोटा काल है आवली। एक स्वतत्ररूप और एक व्यावहारिक रूप, इस तरहसे कालके ये दो भेद कहे गये है।

कालका मूल व्याहारिक भेद—आंखकी पलक तुरन्त बंद करनेमे और बंद करके तुरन्त उठा देनेमे जितना समय लगता है उसे बहुत छोटा समय कहेंगे, पर इतने समयमे अनगिनती आवलियां हो जाती है। उनमे से एक आवलीको व्यवहार कालका रूप दिया है। यो काल द्रव्यमे परिणमन के दो प्रकार है—समय और आवली अथवा एक दृष्टिसे काल ३ प्रकारका है भूत काल, वर्तमान काल और भविष्यत् काल। इन तीनोमे समस्त काल आ गए। वर्तमान काल तो वर्तमान हुआ और सारा व्यतीत हुआ काल भूत काल हुआ और आगे होने वाले समस्त भविष्यत् अतीत कालसे भी बढा है, हैं दोनो असीम।

अतीतकालका प्रमाण—कालके वर्णनमे यह बतला रहे हैं कि अतीत काल है कितना? इसको आचार्य देवने बडी कलापूर्ण ढगसे बताया है कि जितने सस्थान हुए हैं आज जो सिद्ध हुए हैं उनके जितने जन्म हुए है,

जितने शरीर मिले हैं उन स्वस्थानोंमे असंख्यात आवलियोंका गुणा कर दिया जाय, जितना लब्ध हो उतना काल व्यतीत हो गया। इसका भाव यह है कि आज जो सिद्ध हैं उन्होंने जितने जन्म पाये हैं, सो एक जन्म असंख्यात आवलियोंका तो होता ही है, ऐसी असंख्यात आवलियोंके समयका गुणा कर दिया जाय तो अतीत काल है। कितनी उत्तम पद्धतिसे अतीत कालका वर्णन है?

समयपर्यायका स्वरूप—इनमे से अब समय की व्याख्या की जा रही है कि आकाशके एक एक प्रदेशमे एक एक कालाणु ठहरता है, एक परमाणु मदगतिसे गमन करके एक प्रदेशको उल्लघन करदे जितने क्षणमें उसको एक समय कहते है। परमाणुकी तीव्र गति हो तो वह एक समयमें १४ राजू गमन कर जाता है। इसी कारण परमाणुकी मद गतिसे समयका लक्षण बन सकता है और एक परमाणु जिस प्रदेश पर है उसके पासके प्रदेशपर पहुच जाय जितने क्षणमे, उसका नाम है एक समय। वैसे भी इससे अनुमान करो कि जिसे हम वर्ष कहते हैं उसका आधा तो कुछ हो सकता है। वे हैं ६ महीने और जिसे ६ महीने कहते हैं उसका भी आधा कुछ हो सकता है ना, उसे कहते हैं ३ महीने। जिसे हम दिन कहते हैं उसका भी तो आधा कुछ है। जिसको हम मिनट कहते हैं, उसका भी तो आधा कुछ है। इसी तरह सेकेण्डका भी कुछ हिस्सा होता है ना। इसी तरह हिस्सा करते हुए वह अन्तिम हिस्सा जिसका हिस्सा न बन सके उस का नाम है एक समय। यह समय व्यवहारकाल अर्थात् परमार्थभूत जो कालद्रव्य है उस कालद्रव्यका एक शुद्ध परिणमन है।

व्यवहारकालका विस्तार—ऐसे-ऐसे असंख्यात समय मिल जाये तो उनसे बनता है फिर निमिष। निमिष कहते हैं नेत्रके जो पुट हैं उनमें पलक छू जाय और हट जाय, इतने में जितना समय व्यतीत होता है उतने को कहते हैं निमिष और ८ निमिष बराबर होते हैं एक काष्ठाके और १६ काष्ठा बराबर होते हैं एक कलाके और ३२ कला बराबर होते है एक घड़ीके और ६० घडी बराबर होते हैं एक दिनके और ३० दिनका होता है एक महीना और दो माहका होता है एक ऋतु, तीन ऋतुवोंका होता है एक अयन, जिसे कहते हैं दक्षिणायन, उत्तरायण। आजकल समय है उत्तरायणका और दो अयनका होता है एक वर्ष। इस तरह और भी बात आगे लगाते जावो १२ वर्षका होता है एक युग और भी आगे चलते जावो। यो व्यवहार समय अपनी कल्पनासे समयोके संचयसे अनेक प्रकारके होते हैं।

अपनी अतीतकी झाकी—भैया! बतावो अब कितना समय व्यतीत

कर डाला। अनन्त काल व्यतीत किया। किन-किन परिस्थितियोंमे ? ऐसी ही ससारकी दशावोमे व्यतीत किया है। अनन्त काल तो हमारा निगोदमे गया। निगोद नाम कहने से तो आया वनस्पतिका भेद, साधारण वनस्पति पर वह हरी नही है। उसका शरीर भी व्यवहारके लायक नहीं है। वे निगोद कही आश्रयमे रहते हैं, और अनन्ते निगोदिया जीव निरालम्ब रहते हैं। जो आश्रयमें रहते है और जिस आश्रयमे रहते हैं उन सबका मिलकर नाम है सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और जो निराश्रय हैं उनका नाम है सूक्ष्म निगोद अर्थात् साधारण वनस्पति। इन सब निगोदोंकी आयु १ श्वासके १८वां भाग प्रमाण मानी जाती है, पुरुषकी नाड़ी एक बार उचकनेमे जितना समय लगाये उतने समयका नाम श्वांस है। नाड़ीके एक बार चलनेमे जितना समय लगता है उतनेमे १८ बार मर जाते हैं वे निगोद जीव। ऐसे जन्म मरणके महाक्लेश पाते हुए निगोदभवमे अनन्तकाल व्यतीत हुआ।

स्थावरोमे परिभ्रमण—कभी निगोदसे निकले और हो गए अन्य स्थावर जीव—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और पेड़ तो इसमे भी हमने क्या हित किया ? असहाय पृथ्वी आदिक स्थावर अपना किसी भी प्रकार बचाव नहीं कर सकते। और वे खुद तड़पकर अपनी जगह भी छोड़ दे वे इतना भी नहीं कर सकते है। पृथ्वीको खोदते हैं, लो कहीं आग जला दी जाती है। कितनी ही प्रकारसे पृथ्वीका हनन हो रहा है। जलको गरम कर डाला आग पर जला दिया, आदिक रूपोसे वहां भी जलका घात हुआ। अग्निको बुझा दिया और विशेष करके यह परम्परा न जाने किस 'बुद्धिमान्के जमानेसे चली कि साधुको भोजन बनाया तो कोयला बुझा दिया, आग पर पानी डाल दिया और चूल्हेको साफ कर दिया। साधु हैरान हो जाते हैं, न जाने आकाशमे भोजन बनाया या चूल्हेमे बनाया। सीधी बात है कि गृहस्थोके यहां भोजन बन रहा है, साधुको पड़गाह लिया, पहुच गए जितनी देर साधुको आहार देनेका समय है उतनी देर नया भोजन न बनाये जानेकी बात थी, मगर इतनी अप्राकृतिकता हो गयी, साधु की तो कोई कष्ट ही नही है। कष्ट है तो गृहस्थोको घटा भर पहिले आग बुझा दिया और द्वार पर बाट हेरते रहे, फिर घरकी रोटी बनाने को आग जलायेंगे। तो आप समझो कि आगका बुझाना विवेकी गृहस्थ तो नहीं करते। तो अनेक प्रकारसे आगको भी कष्ट दिया। वायुको रबड़मे रोक दिया अथवा अनेक प्राकृतिक रूपोसे वायुका आघात किया। पेड़ पौधों की तो बात ही कौन कहे हैं। चले जा रहे हैं, तोड़ दिया, काट दिया, छेद दिया, भेद दिया, अनेक प्रकारसे वनस्पतिके भवमे क्लेश भोगे।

त्रस भवके क्लेश--कदाचित् स्थावरोंसे निकले तो दो इन्द्रिय लट

आदि बना, तीन इन्द्रिय बना, चार इन्द्रिय बना। कौन मनुष्य इनकी परवाह करता है ? कितने ही लोग तो जमीन पर चलते हुए कीडोंपर अपना मन बहलानेके लिए नाल गडे जूतो रगड़ देते हैं, दिल बहल गया। किन्तु कभी पंचइन्द्रिय हुआ तो वहां भी बडे कष्ट सहे। किन्हीं हिंसक जानवरोंने खा लिया। और चूहे हुए तो बिल्लीने पकड लिया और कुत्ता बिल्लीसे बच जाय तो अनेक बिना पूँछके कुत्ता बिल्ली भी हैं। पकड़ा, डोरासे बाध लिया और खेल करना हो तो नीचे आग जला दिया, कितना कष्ट है ? ये सब कष्ट दूसरेके नहीं हैं, हमारे ही समान वे भी जीव हैं, अथवा हम भी ऐसी पर्यायोंमे हुए थे। चिड़िया, बैल, गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, सूकर, गधा सभीके क्लेश देखते जावो। इन पशुवोंको लोग तब तक लाड़ प्यारसे पालते हैं जब तक इनसे खूब पैसा पैदा होता है, आय होती है। वे जानवर बूढे हो जायें, आय न हो तो उन्हें कौन पूछेगा ? काम तो करते नहीं, सो उन्हें कोई नहीं पूछता है। देव नारकी हुए तो दु:खी रहे।

मनुष्यभवका लाभ—भैया ! कितने प्रकारके हम आपने अनेक कष्ट भोगे और आज हम आप मनुष्य बने, एक सभ्य भव मिला, ढगसे बैठ सकते हैं, अनेक प्रकारसे भोजन बनाकर खाते हैं, पलगोंको बिछाकर सोते है, अनेक वाहनोंका उपयोग करते है, अपनी बात दूसरोंको सुना सकते हैं, दूसरोकी बातको हम समझ सकते हैं, पशु पक्षी आदि सभी तिर्यञ्चों की अपेक्षा हम आपका कितना बडा विकास है और छोटी छोटी बातें क्या बताएँ, उनकी पीठ पर कही मक्खी बैठ जाय तो उडानेका साधन भी पूँछ है। उसीसे उडा सकते हैं पर आपके तो दसो उपाय हैं। कपड़ा पहिन लिया, हाथसे उड़ा दिया। मनुष्यकी नाक सूख जाय तो अगुली भीतर डालकर नाक साफ करलें पर पशु बेचारे किस तरहसे अपनी नाक साफ करें ? अच्छी प्रकारसे देखलो—परमार्थ ज्ञानसे, सभी दृष्टियोंमें हम आप कितने महान भवको प्राप्त हुए हैं ? ऐसे भवको पाकर भी वही विषय कषाय आहार, नींद, भय, मैथुन आदि विषयोमे ही रहे और वही ममता रही तो बतावो मनुष्यभव पानेका लाभ क्या लूटा ?

विषयकषायोका फल—विषय कषायोंके फलमें वही तो होगा ना कि जहां से उठे वही गिरे। तिर्यञ्चमें, निगोदमें। जैसे कहते हैं कि एक साधुके पास चूहा था सो वह चूहा बिल्लीसे डरा। तो साधुने चूहेको आशीर्वाद दिया कि तू बिल्ली हो जा, सो वह बिल्ली बन गया। बिल्ली कुत्तेसे डरी सो कहा कि तू कुत्ता बन जा, सो वह कुत्ता बन गया। कुत्ता शेरसे डरा सो साधुने कहा कि तू शेर बन जा सो वह शेर बन गया। शेरको चाहिए था भोजन सो शेरने सोचा कि साधु महाराजको ही क्यो न पहिले खायें, इनसे

अच्छा मांस और किसका होगा ? सो वह शेर साधुपर झपटा, सो साधुने कहा कि तू पुनः चूहा बन जा। सो वह पुन: चूहा बन गया। यों ही हम आप निगोद आदिसे निकल कर मनुष्यभवमे आए और मनुष्य होकर इस ही आत्मदेवपर हमला करने को तैयार होते हैं तो इस आत्मदेवको यही भर तो अन्तरमें कहना है कि तू पुन निगोद बन जा या तिर्यञ्च बन जा। तो इस अनन्त कालमे आज एक दुर्लभ शरीर पाया है, उसे यों ही खो दिया तो यह तो महामूर्खताकी बात है। कभी तो यह उद्यम हो कि हम बहुत बार ऐसी स्थिति लाएँ कि परसे उपयोग हटाकर इस ज्ञानानन्द स्वरूप को निरखा करे तो इस करतूतसे हमारा जन्म सफल होगा।

सोदाहरण अतीतकालका विवरण--अतीत काल कितना है ? अतीत कालका प्रमाण बतला रहे हैं कायदे मुताबिक कि जो शुद्ध हुए हैं उनकी सिद्ध पर्याय बननेसे पहिले जितने संसार अवस्थामे उनके संस्थान हुए है, जन्म हुए हैं, शरीर मिले है उनसे असंख्य आवलियोका गुणा करके उतने बराबर काल व्यतीत हुआ। कोई पूछे कि १०० कितने होते हैं ? अरे १०० के आधे करलें और उतने ही और मिला दे तो इतने १०० होते हैं कायदे मुताबिक उत्तर ठीक हो गया ना। केवल ज्ञानके कितने अविभाग प्रतिच्छेद होते है। केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंमे कितनी गिनती है कि सब जीव सब पुद्गल अतीत काल और आकाशके प्रदेश और और सब बहुत बातें जितनी होती हों, सब उससे भी केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं अर्थात् ऐसे-ऐसे अनन्त आकाश काल जीव पुद्गल होते तो उन सबको भी केवल ज्ञान जानता है। तो केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद मे से ये आकाश, जीव, पुद्गल, ये सब प्रदेश परमाणु घटा दे। जितने बचें उननेमे फिर उतने ही मिला दें तो पूरा हो जायेगा। चीज कायदेमे तो समझमे आ गयी होगी।

अतीतकालसे भविष्यत्कालकी वृहत्ता--इसी तरह पुन लगावो, अतीत काल कितना हुआ ? जो सिद्ध हुए है उन्होंने ससार अवस्थामे जितने जन्म पाये हैं उनमे असख्य आवलियोका गुणा करदे, जितना काल लब्ध हो उतना व्यतीत हो गया। समझमें तो आ गया पर कितना व्यतीत हुआ यह पकड़मे नही आया। पकड़मे कैसे आए ? वह तो अनन्त काल है और अनागत काल अथवा भविष्यका काल कितना है वह भी इतना ही है कि भविष्यमे जो सिद्ध होगे उसके बाद भी जितना काल व्यतीत हुआ उससे भी अधिक काल। देखो मजेकी बात कि आज पूछ रहे हैं कि अतीतकाल कितना है और भविष्यकाल कितना है। तो यही बतावेंगे कि अतीतकाल अनन्त है और भविष्यकाल अनन्त है। फिर भी दोनोमे बड़ा कौन है ? भविष्यका काल बड़ा बताया है। दिखाई किसी को नही देता है। तो ये

सब व्यवहार कालके विस्तार हैं।

व्यवहारकालका उपमाप्रमाण तक विस्तार—समय, निमेष, काष्ठा, कला, घड़ी, दिन, रात, महीना, ऋतु, अयन और वर्ष। फिर इसके बाद गिनती चलेगी। सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख, करोड़, अरब, खरब, नील, महानील, शंख, महाशंख और इसके बाद पूर्व, पूर्वांग, फिर नयुतन युनाग नलिन, गिनते जाइए, हा हा हूहून, ये सब सख्यातमे बताये हैं। बीचमें कितने ही अग छोड़ दिए हैं, और आगे चले तो पल्य, उसके बाद सागर उसके बाद उत्सर्पिणी और उसके बाद कल्पकाल और कल्पकालके बाद पुद्गल परिवर्तन और सबसे बड़ा भाव परिवर्तन। ये सब व्यवहारकालमे आये, पर कोई तो उपमा रूप हैं और कोई गिनती रूप है। ये सब कालके बहुत भेद हैं पर इस कालके पढनेसे इसका फल क्या मिलता है? उस कालसे मेरा कोई काम नही सधता, मेरा तो मेरे उपादानसे काम सधता है। अन्यकी दृष्टिसे हमे क्या मिलेगा? क्षोभ। एक जो अपना निरुपम शुद्ध चैतन्यतत्त्व है उसको छोड़कर मेरा अन्य किसी से कोई प्रयोजन नही है।

जीवा दु पुग्गलादोऽणंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य परमट्ठो सो हवे कालो ॥३२॥

काल व कालपरिणमन— कालद्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर पृथक्-पृथक् एक-एक ठहरा है। तो उनकी योग्यता उतनी है जितनी कि लोकाकाशके प्रदेश हैं वे असख्यात है और उन कालद्रव्यकी परिणतियो का समय रूप कालपर्याय कितना है? तो जितने जीव हैं, जितने पुद्गल परमाणु है उनसे भी अनन्तगुणा है समय। यह उमर इतनी तेज रफ्तार से व्यतीत हो जाती कि आज जिसकी जो उमर है वह यह सोचता है कि इतनी उमर कैसे जल्दी व्यतीत हो गयी? सब अपना अपना देख लें। तो जैसे जल्दी व्यतीत हो गयी तो भविष्यकी भी शीघ्र व्यतीत होने वाली है। पर चेत नही होता है।

ठठेरेके कबूतर—लोग उपमा दिया करते है, ठठेरे को कबूतरकी। पीतलके ठुकनेकी आवाज सुनकर कबूतर भाग जाते हैं। किंतु ठठेरेके घरमे रोज-रोज पीतल ठुकता रहता था। तो कबूतर रोज रोज कैसे उडे, उसकी भी आदत बन गयी सो वही रहने लगा। ऐसे ही हम लोगो की भी आदत बन गयी। धर्म किया, दर्शन किया, पूजा की, स्वाध्याय किया, करते जाते हैं और कलकी अपेक्षा आज कुछ ज्ञान और विरक्तिका प्रकर्ष हुआ या नहीं हुआ, इसकी कोई परीक्षा नहीं है।

अभी यह बतलावो कि ये सब यहां बैठे हैं ८-१० सालके बच्चे भी यहां बैठे, जवान भी बैठे, वृद्ध लोग भी बैठे तो बड़ा इनमे कौन है ? तो कुछ कहेंगे कि ये जो ५० वर्षके हैं ये बड़े है और ये जो १० वर्षके है ये छोटे हैं। पर यह तो बतावो कि ज्यादा दिन किसे टिकना है ? हालांकि कोई किसीको देख नही आया पर अंदाज तो रहती ही है। तो जो जितनी बड़ी उम्रके हो गए वे छोटे रह गए क्योंकि उन्हें थोडे दिन जीना है।

सबसे बडी समस्या—यह काल इतना जल्दी व्यतीत हो रहा हैं और हम लोगोको सत्संग ऐसा नही अधिक मिलता अथवा स्वाध्याय, अध्ययन इनका प्रसग बहुत अधिक नही मिलता अथवा मोहियोके बीच अधिक रहना पड़ता, इन सब बाह्य साधनोंके प्रसादसे अन्तरमे प्रकर्ष नहीं हो रहा है, लेकिन बड़ी गम्भीर समस्या है जिसके आगे सारी समस्या न कुछ है, आत्मदृष्टि ऐसी जमा ले कि जो ज्ञानानन्द स्वभावमे अनुराग बढाए ऐसी बातके सामने अन्य सब समस्याएँ न कुछ हैं, अरे अगर ऐसा हो गया तो घर मिट गया तो क्या, सब न कुछ बात है। मिट गया तो मिट जाने दो, अभी नुक्सान नहीं हुआ। अजी गांव, देश कुछका कुछ हो गया तो उसमें भी अपना कुछ नुक्सान नही हुआ। और आत्माको अपने आपकी खबर ही न रहे, जीवन व्यतीत हो जाय तो यह है सबसे बड़ी समस्या। जिसका अपने आपसे सदा का सम्बन्ध है वह समस्या सबसे बड़ी है, पर यह बड़ी समस्या तो छोटी बराबर भी सामने नहीं रहती, अन्य अन्य सब बाते प्रमुख स्थान पा लेती हैं और इसकी चर्चा भी नही रहती। पर विवेक कुछ बना है तो यह बात आनी चाहिए कि सबसे बड़ी समस्या हमारे सामने यह ही है कि मेरी दृष्टि अधिकाधिक इस ज्ञायक स्वभावी आत्माके जाननेमे, अनुभवनमे लगे। यह बात कैसे बने ? इससे बढ़कर और कुछ बात नही है।

परिचित क्षेत्रबिन्दुका क्या मूल्य—भैया ! मान लो जान लिया किसीको हजारों आदमियोने और कुछ अच्छा कह दिया तो ये तो सब गोरखधधा है, फसनेकी बाते हैं। कोई काम सिद्ध होनेकी बात नही हैं। क्या होना है ? ३४३ घनराजू प्रमाण लोकके आगे यह १०-२० मीलका चक्कर या ५०० हजार मीलका क्षेत्र ये क्या गिनतीमे रहते हैं ? एक बड़े समुद्रके सामने एक बूँदका तो फिर भी गणितमे नम्बर आ जायेगा पर इस लोक के सामने हजार पांच सौ मीलका तो बिन्दु बराबर भी माप नहीं होता। इतनेसे क्षेत्रका मोह है और बाकी क्षेत्र इससे असंख्यात गुणे पडे हैं। इनमें कोई मेरी प्रशंसा करने वाला नही है। तो जब इतनी बड़ी जगहमे मेरा कोई प्रशसक नही है तो जरासे क्षेत्रके प्रशंसकोसे कौन सी सिद्धि हो गयी ?

परिचितकाल बिन्दुका क्या मूल्य--समय काल कितना है ? अनन्तकाल जिस कालके सामने ये १०, २० वर्ष तो क्या, सागर भ। गिनती नहीं रखता। खरबों, अरबोंके वर्ष भी कोई गिनती नही रखते तो भला अपनी कल्पनाके अनुसार यहां कुछ अच्छी करतूत कर जायें या कुछ बना जाएँ, नाम गढ जाये तो उससे कितनी आशा रखते हो कि कितने वर्ष तक उसका नाम चलेगा। अरे ज्यादासे ज्याद २५-५० वर्ष तक नाम चलेगा, उसके बादमें और भी वैसे ही लोग होंगे कि जीर्णोद्धार होगा, तो जिसका काम पहिले था उससे बढकर कोई हो गया तो उसका नाम उसकी जगह पर आ जायेगा तो कहा तक नाम बना रहेगा ? अब कौन ख्याल करता है। इन सौ, दो सौ, चार सौ वर्षोंके लिए अपना यश फैलानेसे क्या फायदा है ? अनन्ते कालके सामने यह इतना समय कुछ गिनती भी रखता है क्या ? कुछ भी तो गिनती नहीं रखता है। तो फिर क्यों इतने समयकी स्थितियोंमें मोह करके अपने को बरबाद किया जा रहा है ?

परपरिणमनका स्वमे अत्यन्ताभाव--वैज्ञानिक ढंगसे भी देखो तो कोई कैसा भी परिणमे, उससे अपनेको कुछ भी बात नहीं है। खुद का तो सब कुछ अपने ही परिणमन पर निर्भर है। सो समय कालके वर्णनमे हम इतनी दृष्टि तो बना लें कि काल तो अनन्त पड़ा हुआ है। उसमें से ये सौ पचास वर्ष कुछ भी मूल्य नही रखते। इतने कालके लिए अपने भाव बिगाडें तो उसका संसार लम्बा होता चला जाता है और उस परम्परासे अनन्त काल दुःख भोगने पड़ते हैं। सो जरासा गम खाना है कि सदाके लिए आराम मिलेगा। इस मनुष्यभवमें ही कुछ गम खा लें, विषय कषायों का आकर्षण न रखें तो अनन्त काल शाश्वत सुखमे व्यतीत हो सकेंगे। अनन्त भवोमें एक मनुष्यभव ही विषय कषाय बिना रहे आए तो क्या बिगड़ा, बल्कि अनन्त काल फिर आनन्दमे व्यतीत होगा। पर नहीं सोचते हैं। खूँटा तोड़ कर मोहमें पगते हैं।

अपनी अपने पर जिम्मेदारी--भैया ! खुदके अपराधको कोई दूसरा न भोगेगा। प्रत्येक पदार्थ सत् है। स्वयं ही उसका परिणमन है। स्वय ही जिम्मेदार है। यह व्यवस्था अवश्य है कि विभाव परिणमन जो होता है वह किसी परका निमित्त करके होता है। पदार्थका परिणमन स्वभाव होनेके कारण समस्त परिणमन खुद ही चलते हैं और उनका फल भा खुद को भोगना पड़ता है। हा सब न माने तो न सही, इसको मै ही मान लूँ ऐसा सोचना चाहिए। सबकी ओर क्यों दृष्टि जाय कि सब तो लगे हैं। वैभव जोड़नेमें, धनकी होड लगानेमे। खुदकी बात सोचो कि मै तो लोक मे सर्व से विविक्त केवल निज सत्ता मात्र हू। इसको कोई जानता भी नहीं,

कोई इससे व्यवहार भी नहीं करता, यह तो सदा अकेला ही पड़ा हुआ है। मै अपनेमे अपना काम करता हूं, सब अपनेमे अपना काम करते हैं, फिर अपने ही हितकी बात सोची जाय।

स्वयंकी सभाल--कुआ नहीं छन सकता है। छानना तो अपना ही लोटा पडेगा। सबको जानो, सब बडे अच्छे हो जाये, एक तो ऐसा हो नहीं सकता और हो भी गया और खुद जैसेके तैसे ही रहे तो उसमें खुद का क्या हुआ ? कोई बूढे बाबा बाजारमे साग भाजी खरीदने जाएँ और वहीं पड़ौसकी दस बीस बहुवे आ जायें और कहें कि बाबा दो आनेकी सब्जी हमे ला दो, कोई कहे हमें चार आनेकी ला दो। तो बाबा बाजारमें जाकर सबकी सब्जी तो ले ले और बादमे जो दो आनेकी खराब सब्जी बची सो खुद ले ले और फिर घरमे आकर वह यह कहे कि हम बड़े परोपकारी हैं, पहिले गांवकी बहुवोंकी अच्छी अच्छी सब्जी ले दिया और बादमे जो बची उसे अपने लिए खरीद लिया, हम बडे दयालु हैं। ऐसा यदि वह बूढा बाबा कहे तो घरकी बहू तो रूठ जायेगी ना। अरे पहिले अपने लिए खरीद लेते बादमें पड़ौस की बहुवोके लिए खरीद लेते। तो पहिले खुदकी संभाल कर लीजिए।

निगोदके कार्यक्रमोंका अभ्यास--दूसरेकी संभाल करने मे आप समर्थ नहीं हो सकते हैं। खुदकी दृष्टि न सभाले तो वह दूसरोका भला करनेमे भी समर्थ नहीं हो सकता है। सुधरो अथवा न सुधरो, खुदकी बाततो सोचो, यहांसे मर कर कहां पैदा होंगे ? फिर किसीसे क्या रहा सम्बन्ध ? इतना तीव्र व्यामोह कि दूसरेके सुखमे सुखी और दूसरेके दु खमे दु·खी। दूसरे सांस लें तो अपन भी सांस ले, दूसरेंको दम घुटे तो खुदकी दम घुटे। इतना तेज मोह है। सो सायद ऐसी बात होगी कि अगले भवमे निगोद जाना है सो वहां ऐसा करना पडेगा सो उसका अभ्यास यहां किया जा रहा है। हम एकके जन्मते जन जायें, एकके मरते मर जाये, ऐसा करना पडेगा। इसका ऐक्सरसाइज है यह सो सीख ले। दूसरेके दु·खमे दुःखी हो, दूसरे सांस ले तब सांस ले, तो हम निगोदकी बात सीख रहे हैं। क्या सिद्धि है ?

परिजनसग व धर्मप्रगति—भैया ! यहां यदि सम्बन्ध हुआ है, परिवार है, कुटुम्ब है तो उस सम्बन्धको धर्मके लिए समझो, मौज और भोगके लिए न समझो। धर्मके रूपमे व्यवहार हो और परस्पर धर्मप्रगतिका उत्साह हो तो उस संगसे कुछ लाभ भी मिलेगा अन्यथा केवल मोह भोग मौजके लिए ही सम्बन्ध है तो वहा एक दूसरेके बिगाड़की होड़ हो रही है, और दूसरी कोई बात नहीं है।

यह काल जो व्यतीत हो रहा है इसका स्रोत; साधन है निश्चय काल द्रव्य । अब जरा मार्गणा दृष्टिसे विचार करो कि यदि यह काल द्रव्य न होता तो यह काल समय कहां होता और समय न होता तो पदार्थ का परिणमन कैसे होता और पदार्थका परिणमन न होता तो द्रव्य भी कहलाता । जब द्रव्य भी न रहा, परिणमन भी न रहा तो कुछ भी न रहा पर ऐसा है कहा ? हम तो कहते हैं कि हम कुछ न हों तो बड़ी अच्छी बात है । हम सिफर बन जायें अच्छी बात है पर बन कैसे जायें ? स यदि प्रवर्तते हैं तो परिणमेंगे । अब तो इसीमें भलाई है कि ऐसा परिणाम बनाएँ कि हमारे भाव अनाकुलतापूर्ण हों ।

कालपरिज्ञानका सदुपयोग—कालद्रव्य वर्तनाका कारण है । कुम्हारके चक्रकी जैसे यह कील एक आधार है, सारा चक्र उसीके सहारे घूम रहा है । यों ही यह काल द्रव्य एक निमित्तभूत आधार है और सर्व ओर परिणमन हो रहा है ? यदि कालद्रव्य न होता तो ५ अस्तिकायोंका फिर परिणमन कहासे होता । तो यह कालका वर्णन जानकर काल पर दृष्टि नहीं देना, किन्तु समझ लेना है कि अब इन क्षणोंको यों ही अनाप सनाप नहीं व्यतीत करना है किन्तु ऐसी आत्मदृष्टि जगे कि हमें अपना कल्याण करना है । यह बात अपनेमें घर कर जाय और ऐसी लगन लग जाय कि मोहमें सार नहीं है किन्तु शुद्ध जो निज सहज ज्ञायकस्वरूप है उसकी दृष्टि में ही लाभ है, उसीका ही हमें यत्न करना है ।

प्रतीतिसिद्ध व युक्तिसिद्ध पदार्थ—द्रव्यकी जातिया सब ६ हैं— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । इन ६ द्रव्योंमे से जीव और पुद्गल ये दो प्रकारके द्रव्य तो प्रतीतिमे आते हैं । इसकी समझ अधिक बैठती है । जीवके सम्बन्धमें तो बहुत परिचय है । चाहे उसका सहज स्वरूप न जान पाये पर जीवके सम्बन्धमे साधारणतया सबको कुछ न कुछ ज्ञान है । बता दोगे देखते ही कि इसमें जीव है, इसमे जीव नहीं है । जीव द्रव्यका प्रत्यय लोगोंको अधिक है और पुद्गलद्रव्यकी भी प्रतीति अधिक है । ये सब आखों जो कुछ दिखते हैं ये स्कंध पुद्गल ही तो हैं, पर शेष चारो द्रव्य सूक्ष्म हैं जो प्रतीतिमें नहीं आ पाते, युक्तियोंसे जाननेमें आते हैं ।

धर्म, अधर्म, आकाश व कालका परिचय—जैसे मछलियोंको चलनेमें जल सहकारी कारण है, वह एक विशेष बात है, पर जीव पुद्गलको चलानेमें कोई चीज सहकारी कारण हैं तो उस वस्तुका नाम है धर्मद्रव्य । और जब धर्मद्रव्य आदिक जो गमनका हेतु है तो गमन करके जो स्थित हो, ठहरता हो तो जितने नवीन कार्य होते हैं उनका कोई निमित्त कारण

होता है तो धर्मद्रव्यका प्रतिपक्षी कोई कारण होना चाहिए। वह है अधर्म द्रव्य। आकाशकी बात भी बहुत कुछ समझमे आ रही है। जहां चलते हैं वही तो आकाश है। कहते भी हैं लोग कि पक्षी आकाशमें उड़ते हैं, हवाई जहाज आकाशमें चलता है। आकाश बहुत प्रतीतिमें आ रहा है पर सूक्ष्म होनेसे पुद्गलकी भांति विशेष स्पष्ट नहीं हो पाता पर हां वह आकाश है। कालद्रव्य व्यवहार कालके द्वारसे यह भी युक्तिमें आता है मिनट घड़ी, घटा दिन महीना यह समय गुजरता है ना। तो यह समय जो गुजर रहा है यह समय नामक परिणमन किसी द्रव्यका ही तो होना चाहिए जो भी परिणमन है उसका आधारभूत कोई द्रव्य ही होता है। तो समय परिणमन का आधार भूत कालद्रव्य है। यों ६ पदार्थ यहां बताये जा रहे हैं। उनमे अतिम जो कालद्रव्य है उसका स्वरूप चल रहा है। अब उस ही कालके संबन्धमें कुछ और वर्णन कर रहे हैं।

जीवादीदव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादिचउन्नाणं सहावगुणपज्जया होंति ॥३३॥

कालपदार्थ व उसका उपग्रह—जीवादिक समस्त द्रव्योंके परिवर्तनका जो कारण है वह काल पदार्थ है। कालपदार्थ पदार्थके परिणमनका हेतुभूत है और कालके परिणमनमे काल ही हेतुभूत है। कालद्रव्य भी तो परिणमन करता है। कालद्रव्यका परिणमन है समय। जिन समयोंके समूहका नाम है सेकेण्ड, मिनट आदिक तो समय नामक जो कालद्रव्यका परिणमन होता है उसका निमित्त क्या है? उपादान तो कालद्रव्य ही है और निमित्त भी कालद्रव्य है। खुद ही निमित्त और खुद ही उपादान हुआ। अन्य कोई पदार्थ निमित्त नहीं होता ऐसा पदार्थ है तो वह काल द्रव्य है। धर्म, अधर्म, आकाश इनका भी परिणमन चलता है। इनके परिणमनोंका निमित्त है कालद्रव्य। उपादान वह स्वयं ही है। जो जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन ५ द्रव्योंकी पर्यायोंके परिणमनका कारण हो जिसका परिवर्तन चिन्ह है उसे कालद्रव्य कहते हैं। कालद्रव्य पंचअस्तिकायोंके परिणमनका निमित्तभूत है। काल अस्तिकाय नही है क्यों कि वह एकप्रदेशी है। वह ५ अस्तिकायोंके परिणमनका हेतु है और परिणमन का हेतु दूसरेका है और स्वयका भी है।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्यकी शाश्वत अबन्धता—अब इन ६ द्रव्योमेसे धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनका अन्य द्रव्योंके साथ सम्पर्क नहीं होता। न सजातीय पदार्थका सबंध है और न विजातीय पदार्थका सम्बन्ध है, किन्तु जिस जीवके स्वबन्धके प्रसगमें जो नर नारकादिक पर्यायें बनती हैं उनमें विजातीय बध है, तथा पुद्गलोंमें

सजातीय बन्ध है। ऐसा बंध इन चार द्रव्योंमें नहीं है क्योंकि धर्म धर्मके साथ कैसे मिलेगा ? अधर्मद्रव्य तो एक ही है। अधर्मद्रव्य भी एक ही है, आकाशद्रव्य भी एक ही है, रहा शेष कालद्रव्य सो वह है यद्यपि असंख्यात लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालाणु ठहरा है लेकिन वह तो स्थिर है जो कालाणु जिस प्रदेश पर है वह उसही जगह रहता है, हेर फेर नही होता। कालाणुवोंमें स्थान परिवर्तन नहीं चलता। जहां जो कालाणु है वहा ही वह कालाणु स्थित है। फिर एक कालद्रव्यके साथ दूसरे कालद्रव्यका सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?

स्वभावगुणपर्याय—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य इन चार द्रव्योंमे न तो सजातीय बध है और न विजातीय बध है। इस कारण इन चार द्रव्योके विभाव गुणपर्याय होते ही नही हैं। धर्मद्रव्यमे स्वभावगुणपर्याय है। अधर्म, आकाश और कालमें द्रव्यमे भी स्वभावगुण पर्याय हैं। विभावगुणपर्याय इसमे नहीं होती है। गुणपर्यायका अर्थ है कि पदार्थमे जो गुण हैं, शाश्वत शक्ति है उसका जो परिणमन है उसे गुणपर्याय कहते हैं। इन ६ द्रव्योंमे चार द्रव्योको छोडकर शेषके जो दो बचे हैं जीव और पुद्गल, इनमे स्वभावगुण पर्याय भी होता है और विभावगुण पर्याय भी होता है। जीवमे स्वभावगुणपर्याय है वह जो भगवानमे पायी जाती है।

जीवके स्वभावगुण पर्याय—ज्ञानका स्वभावगुण पर्याय केवलज्ञान है, दर्शनका स्वभावगुण पर्याय केवलदर्शन है, आनन्दका स्वभावगुणपर्याय आनन्द है। चारित्रगुणका स्वभावगुण पर्याय शाश्वत आत्मस्थिरता है। ये तो है सब स्वभाव गुण पर्यायें और ससारी जीवोंमे विभाव गुणपर्यायें मिलती है। ज्ञानशक्तिकी विभाव गुण पर्याय है। केवलज्ञान को छोडकर शेषके ७ ज्ञान, दर्शन गुणके विभाव पर्याय हैं—केवल दर्शनको छोडकर शेषके सब दर्शन। आनन्द गुणके विभाव परिणमन है सुख और दुःख। जो परिणमन पर-उपाधिका निमित्त पाकर हो उसे विभावपरिणमन कहते है। खुद वही पदार्थ खुदमें विभावका कारण नहीं बनता है।

विभावगुणपर्यायत्वका कारण औपाधिकता—यद्यपि विभाव उस ही खुदके द्रव्यसे उत्पन्न होता है जो कि उपादानभूत है, पर निमित्तभूत वही पदार्थ नही है। यदि वही एक पदार्थ विभावका जैसा उपादान है, निमित्त भी बन जाय तो वह निमित्तभूत पदार्थ तो शाश्वत है फिर सदा ही विभाव रहना चाहिए। विभाव परपदार्थका निमित्त पाकर उत्पन्न होता है और इसी कारण वह विभाव कहलाता है। आत्मातिरिक्त अन्य पदार्थोंका निमित्त पाकर जो भी परिणमन होगा वह स्वभावसे विपरीत

परिणमन होगा, स्वभाव परिणमन नहीं। इस जीवके साथ कर्म लगे हैं, और वे ही इस जीवके विभावगुण परिणमनके निमित्त होते हैं। अन्य जो इन्द्रियके विषय हैं ये जीवके विभाव गुण परिणमनमें निमित्त नहीं होते। कर्मोंका उदय हो तो उसका फल मिले। इसमें भी आश्रयभूत नोकर्मका सम्बन्ध हो तो फल मिलता है। जैसा कर्मोदय है और कुछ नोकर्म है उस नोकर्मका सन्निधान होने पर कर्मोदय फलवान् होता है।

वाह्य साधनोंका स्थान--भैया! कदाचित् ऐसा भी हो जाता कि नोकर्म न हो तो कर्मोदय निष्फल हो जाता है, और इस दृष्टिसे चरणानुयोगकी पद्धति अधिक ग्राह्य हो गयी है। अब त्याग करो नोकर्मका। विषय कषायोंके आश्रयभूत पदार्थोंका त्याग करो तो बहुत कुछ यह सम्भव है कि नोकर्म न मिलनेसे वे कर्म निष्फल खिर जाये। ठीक है फिर भी बहुत बड़ी आपत्ति यह लगी है कि कर्मोदय जब होता है तो जो भी सहज मिल गया उसी का आश्रय बनाकर उस विपाकमें वह जाता है। जैसे किसीको गुस्सेकी आदत पड़ी है तो दूसरा आत्मा वो साथ हो उसका आश्रय करके गुस्से करेगा। कोई यह सोचे कि अमुक व्यक्तिके होनेसे गुस्सा आता है, इस व्यतिको न रहना चाहिए तो चाहे वह व्यक्ति न रहे तो भी जो कुछ भी मिलेगा, उसका आश्रय करके वह गुस्सा करने लगेगा। और कभी यह स्थिति आ जाय कि कोई संग भी न मिले तो खुदकी ही अनेक घटनाएँ ऐसी चलती रहती हैं, थोड़ा हाथ पैर या सिरमें कुछ लग गया लो घटना बन गयी, उसीका आश्रय करके गुस्सा बन जायेगा।

विभाव्य उपादानको निमित्तोकी सुलभता---भैया! ऐसे बहुत कम स्थल होते हैं कि नोकर्मके अभावमें कर्म निष्फल जाये। क्योंकि यह जगत नोकर्मसे भरा हुआ है। जैसे किसीको घमड करनेकी प्रकृति बनी है और उस घमडका पोषण घरमें नहीं हो पाता, परिवारके लोग उसे मान नहीं देते है। तो गुस्सामें आकर घर छोड देगा। और कही न कहीं तो जायेगा ही। सो जहा जायेगा, जिस गोष्ठीमें वह होगा उसमें ही परजीवोंको लक्ष्यमें लेकर अब घमंड पोषणकी मनमें लायेगा तो जब उदय और योग्यता अनुकूल चलती है तो जगत तो नोकर्मोसे भरा हुआ है। जिस चाहे पदार्थका आश्रय करके यह अपने कषायोंको उगलेगा। फिर भी चरणानुयोगकी पद्धतिसे नोकर्मका त्याग करने वाला ज्ञानी पुरुष बहुत कुछ अपनी रक्षा कर लेता है और फरक पडना ही है। जब अधिक संकल्प विकल्प करनेका वातावरण नहीं रहता है तो निर्विकल्प समाधिकी पात्रता उसमें विशेषतया प्रकट हो ही जाती है। आत्मामें जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र आनन्द, श्रद्धा गुण है ये उपाधिके सन्निधानमें चूँकि हमारी

योग्यता भी विकाररूप परिणमने की है सो विकाररूप परिणम जाता है, वे सब है विभावगुण पर्यायें।

सहज स्वरूपके सभालकी आवश्यकता—जब यह जीव अपने आपके सहज स्वरूपकी संभाल कर ले तो ज्ञायकस्वरूपकी दृष्टिके बलसे ऐसा योग्य बनता है यह जीव कि वहां विभावपरिणमन शात होता है और स्वभावपरिणमन की तैयारियां होने लगती हैं। जब यह जीव सर्वथा शुद्ध हो जाता है तो उसमे व्यक्त स्वभावगुण पर्याय प्रकट हो जाती है। यह तो प्रयोगसिद्ध बात है और जो चाहे कर सकता है कि जब परपदार्थकी ओर अपनी दृष्टि रखता है, आकर्षण करता है तब तो इसे आकुलता उत्पन्न होती है और जब परपदार्थका निरोध रहता है तब चूँकि केवल यह स्व ही ज्ञानमे रहता है अत इसमे आकुलता का स्थान नहीं मिलता। आनन्द चाहिए, शाति चाहिए तो एकमात्र यही उपाय है अपने सहज-स्वरूपका ज्ञान करना। सहजस्वरूप रूप मै हू, ऐसी प्रतीति करना और इस स्वरूपमे ही स्थिर होना, मग्न होना, यही आनन्द पानेका एकमात्र उपाय है।

आत्मप्रयोग—यहा कुछ पीछे की बात तो नहीं कही जा रही है। तीनो लोकोंमे कहा-कहा कैसी कैसी रचना है? इसकी बात नही कही जा रही है अथवा बहुत काल पहिले क्या हुआ था, उस इतिहासकी बात नहीं कही जा रही है, किन्तु यहा तो ऐसी बात स्पष्ट है जैसे चक्कूपर धार लगाने वाले धार लगाते जाते और धारको देखते जाते, आजमाते जाते यों ही अपने आपमे जो गुण हैं, शक्ति है उसकी धार बनाता जाय, परि-णति करता जाय, धार देखता जाय धारको आजमाता जाय। यह कहीं अन्य जगहकी बात नहीं कही जा रही है, खुदकी ही बात है। थोडा परका आकर्षण छोडो, किसी परमे रखा कुछ नहीं है, वे मेरे लिए कुछ शरण नहीं हैं। यहांका यह कषायानुकूल व्यवहार है, फिर वस्तुतः सब आत्मा जुदे-जुदे है। तो जरा ऐसा जानकर मोहमे अन्तर कर, परका आकर्षण न बना, तो अपनी यह बात समझमे जल्दी आ जायेगी।

अपनी बात—यह आत्मा ज्ञानमय ही तो है। स्वय ज्ञानमय है और ज्ञान द्वारा यही ज्ञानमे न आए यह कैसे हो सकता है? परपदार्थोंकी ओर बहुत दूर तक देखते है। जैसे बहुत दूरकी चीज को देखनेमें अपनी निगाह लगाई हो तो न खुद ही देखनेमें आता है और निकटकी भी चीज देखनेमे नही आती। ऐसे ही उपयोग द्वारा बहुत दूरकी बात अत्यन्त भिन्न पदार्थकी बात हम देखनेमे लगे हों तो वहा न हम दिख सकते हैं और न हमारे निकटवर्ती रागादिक करतूत कर्म दिखनेमे आ सकते हैं।

मोह भाव कम होने पर आकर्षण नहीं होता। और ऐसी स्थितिमें अपनी बातकी समझ बैठ सकती है अन्यथा अपनी बात अपनी समझमें नही आ सकती।

निकटीय वातावरणके विज्ञानकी आवश्यकता--इस ग्रन्थमें इस प्रकरण तक ६ द्रव्योंकी विशद व्याख्या चल रही है और यह सब सम्यग्ज्ञान हमारे आत्महितके साधनमें साधक बन रहा है। अपने निकटका समस्त वातावरण यदि अच्छी तरहसे विदित हो तो वह पुरुष सावधान विवेकी, स्वच्छ, साफ बना रहता है। और जिसे अपने निकटका वातावरण भी न मालूम हो वह तो अंधेरेमें है, धोखेमें है, विनाशके सम्मुख है। तो हमारे निकटका यह सब वातावरण है। छहों द्रव्य वाली बात हमारे ही निकटका वातावरण है, पुद्गलमें तो निकटता है ही। शरीरसे लगा है। कर्मोंका बंधन है, सूक्ष्म शरीर भी इसका साथ नहीं छोड़ते हैं जब तक मोक्ष नहीं होता। ऐसा निकट वातावरण है, उसके बारेमें हमें सही बात न मालूम पड़े तो हम कहा सावधान रह सकते हैं, विवेकी रह सकते हैं और प्रगतिशील कहासे हो सकते है? इस कारण इन सबका जानना आवश्यक है।

कालका निकट सम्बन्ध—धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये भी हमारे अनुभवमें नहीं समा पाते हैं फिर भी हैं तो हमारे निकटके ही वातावरण। कालद्रव्यके परिणमनरूप समयके गुजरनेका निमित्त पाकर हम परिणमा करते हैं। कोई बालक ८ वर्षका है। साल भर बाद जो उसकी परिस्थिति बन सकती है, साल व्यतीत न हो तो कहां बन जायेगी? ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता है त्यों-त्यों यह परिणमन बनता रहता है। तो कालद्रव्यसे भी हमारे सम्बन्धकी निकटता है।

आकाशका निकट सम्बन्ध—आकाश जिसमें हम बैठे ही हैं उसकी भ निकटता है और धर्म अधर्म इसमें भी निकटता है। हम चलते हैं, ठहरते हैं, सो ठहरते तो हैं, किन्तु है इन सबमें हमारा अत्यन्ताभाव। इनसे मुझ में कुछ आता नहीं। यदि स्वरूपदृष्टिसे निरखो तो कोई एक प्रश्नका उत्तर चाहेगा कि बतावो तुम कहा रहते हो? तो उसका उत्तर होगा कि हम अपने प्रदेशोंमें रहते हैं। आकाशमें नहीं रहते है। आकाशमें आकाश है और हममें हम हैं। भले ही अनादि कालसे यह बात बनी हुई है कि हम आकाशको छोड़कर अन्यत्र नहीं रहते, न रहेंगे, इतने पर भी जैसे आकाशद्रव्य अपने घरका बादशाह है, पूर्ण है, उस आकाशका सब कुछ उस आकाशमें ही है, इस प्रकार हम भी अपने घरके राजा हैं, अपने ही में पूर्ण हैं और अपनेमें ही परिणमते है। जब इस आकाशद्रव्यसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा, भिन्नता बनी है तो हम आकाशमें कहा है, हम तो

अपने आपमे है। स्वरूपदृष्टिसे इस भांति देखा जाता है।

इन सब पदार्थोंका विवरण अत्यन्त रम्य है, भव्य जीवोंको सुनकर अमृत समान सतोष देने वाला है। जो पुरुष प्रमुदित चित्त होकर इस सब ज्ञानको जानता है उसका यह सब परिज्ञान ससारसकटोंसे मुक्ति पानेके लिए कारण होता है।

एदे छद्दव्वाणि य काल मोत्तूण अत्थिकायत्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु वहुप्पदेसत्तं ॥३४॥

पाच द्रव्योंके अस्तिकायपना—ये ६ द्रव्य हैं। इनमें कालको छोड़कर शेषके ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं। जो वहुप्रदेशी होते हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। अस्तिकाय शब्दमें दो शब्द हैं—अस्ति और काय अर्थात् है और बहुप्रदेशी है। उनका सद्भाव है इसका द्योतक तो है अस्ति, और वह बहुप्रदेशी है इसका वाचक है काय। कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है क्योंकि कालद्रव्य एकप्रदेशी है, दो प्रदेशी भी नहीं है। और इससे ऊपर कोई भी बहुप्रदेशी नहीं है। समय नामक द्रव्य अप्रदेशी होता है ऐसा आगममें कहा है। अप्रदेशीका अर्थ प्रदेशरहित नहीं लेना, किन्तु बहुप्रदेशी नही है मात्र एकप्रदेशी है यह समझना। जैसे अनुदर कन्या कहते हैं उसे जिसका पेट चिपटा हो, बहुत पतला हो तो कहते हैं कि इसके पेट ही नहीं है। अरे यदि पेट नहीं है तो खड़ा कैसे होगी ? पर इसके मोटा पेट नही है, ऐसे ही अप्रदेशी कहे तो इसका अर्थ यह नहीं लेना कि उसमे प्रदेश नही हैं, किन्तु बहुप्रदेश नही हैं। काल तो केवल द्रव्यस्वरूप है और काल के अतिरिक्त अन्य ५ द्रव्य अस्तिकाय भी हैं।

काय शब्दका अर्थ—काय शब्दका अर्थ है सचीयते इति काय। जो सचित किया जाय उसे काय कहते है। जिसमे बहुतसे प्रदेश प्रचय हो, उसे अस्तिकाय कहते हैं अथवा काय मायने शरीर। जैसे शरीर बहुप्रदेशी होता है उसी तरह जो बहुप्रदेशी हो उसे काय कहते है। अग्रेजीमे तो कायको बॉडी बोलते है। तो चाहे जीवकी बाडी हो, चाहे अजीवका कोई पिण्ड हो उसका भी नाम बॉडी है। शरीरको भी काय कहते हैं, और जो शरीर नही है किन्तु बहुप्रदेशी है, सचयात्मक है उसे भी काय कहते हैं। बोडीका ठीक पर्याय काय हो सकता है, शरीर नही हो सकता है। तो जो कायकी तरह हो उसे काय कहते हैं। अस्तिकाय ५ होते है--जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। इनमे अस्ति नाम सत्ताका है और काय नाम बहुप्रदेशपनका है।

सत्ता और सत्ताकी सप्रतिपक्षता—सर्वप्रथम सत्ताका अर्थ किया जा

रहा है। सत्ता कैसी होती है? सप्रतिपक्ष अर्थात् विरोधी भाव सहित कोई चीज सत् है तो वही चीज असत् भी है। किसी प्रकार यदि मनुष्य सत् है तो मनुष्यत्वकी अपेक्षा और मनुष्यत्वके सिवाय बाकी पशु पक्षी आदि जितने अन्य जीव हैं उन सबकी अपेक्षासे असत् है। जैसे स्याद्वाद मे कहते हैं स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति। स्वरूपेण सत्, पर रूपेण असत्। अच्छा जरा और अन्तरकी बात देखो, भिन्न-भिन्न वस्तुओसे बनाया गया स्याद्वाद तो अच्छा नही लगा। क्योंकि एक ही वस्तुमे सत् और असत् नहीं बताये। एक वस्तुका सत् उस वस्तुका है तो अन्य वस्तुवोकी अपेक्षा असत् है ऐसा बताया है। जिज्ञासु कहता है कि मुझे तो ऐसा स्याद्वाद बतावो कि उसी पदार्थमे सत् भी पड़ा हो और उसी पदार्थ की अपेक्षा वही पदार्थ असत् हो जाता हो। जैसे नित्य और अनित्य, ये हमे ठीक जच रहे है। जीव नित्य है तो जीवकी ही अपेक्षा नित्य है और जीव अनित्य है तो उसही जीवकी अपेक्षा अनित्य है। उसही एक जीवके जो द्रव्यत्व है उसकी दृष्टिसे तो वह नित्य है और जो पर्यायत्व है उसही जीवमे उसकी दृष्टिसे अनित्य है। तो यह तो स्याद्वाद हमे भा गया कि देखो दूसरे पदार्थकी अपेक्षा नही गायी गयी पर सत् असत्मे तो परकी अपेक्षा लेकर तुम बोलते हो। जीव जीव रूपसे सत् है और जीव अजीव रूपसे असत् है। हमे तो नित्य अनित्य एक अनेककी तरह एक ही पदार्थकी अपेक्षासे सत् बतावो और उसही पदार्थकी अपेक्षासे असत् बतावो तो हो सकता है क्या ऐसा? हो सकता है। कैसे हो सकता है, इसको दो तीन मिनट बादमे बतायेंगे।

सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी द्वितीय दृष्टि—भैया! पहिले ऐसा जानो कि सत्ता प्रतिपक्षसहित है, अर्थात् सत्ता दो प्रकार की है महासत्ता और आवान्तर सत्ता। महासत्ता तो वह है जो सब पदार्थोमे सामान्य सत्त्व पाया जाता है और एक एक पदार्थकी जो सत्ता है वह है आवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे आवातर सत्ता असत्ता है और आवांतर सत्ताकी अपेक्षासे महासत्ताकी अपेक्षासे महासत्ता असत् है। यह भी कुछ भिन्न-भिन्न बात कही जा रही है। इसमे इतना तो आया कि महासत्तामे सब आ गये। उसमे ही आवातर सत्ताका एक रूप ले लिया है। और पहिले जो बताया था, जिसकी जिज्ञासामे आपको कहा गया है कि २-३ मिनट मे बतावेगे यह तो इससे भी और दूरकी बात थी। जीव जीवकी अपेक्षा सत् है तो असत्मे जीवको छुवा ही नही गया। अजीवकी अपेक्षा असत है और इस महासत्ता व आवातर सत्तामे कमसे कम इतनी बात तो आयी कि महासत्तामे सबका ग्रहण है। उसमे आवातर सत्ता भी पड़ी है। जिस किसी वस्तुकी सत्ता निरख रहे हैं वह हमारे सबके समानाधिकारमे पड़ी

भई है। लेकिन जिज्ञासु कहता है कि मुझे इस कथनसे भी संतोष नहीं हो रहा है। हमे तो एक ही ऐसा पदार्थ बतावो कि उस पदार्थकी अपेक्षासे यह सत् है और इसही पदार्थकी अपेक्षासे यह असत् है। दूसरी बात सुन कर जिज्ञासु उस बातको अपने अन्तरकी बातको भूल नहीं रहा है। हमें तो एक ही पदार्थ बतावो कि उस ही पदार्थकी अपेक्षा सत् हो और उस ही पदार्थकी अपेक्षा असत् हो। अच्छा, तो चलो अब।

सत्ता की सप्रतिपक्षता की तृतीय दृष्टि—देखो भैया! पदार्थ गुण-पर्यायात्मक है। उस पदार्थ को हम कभी 'गुण समुदायो द्रव्यम्' इस रूपसे भी देख सकते हैं और उस ही पदार्थको 'पर्याय समुदायो द्रव्यम्' इस रूपसे भी देख सकते हैं। जब हमने गुण रूपसे उसका सत्त्व देखा तो पर्याय रूपसे समझमें आने वाला सत्त्व वह नहीं है। तब जो गुणात्मकताके रूपमें सत् है वही पदार्थ पर्यायात्मकताके रूपमें असत् है और जब उसे पर्यायात्मकताके रूपसे निरखा तो पर्यायात्मकताकी निगाहसे तो सत् है किन्तु गुणात्मकताकी दृष्टिसे असत् है। गुणात्मकता महासत्ता है और पर्यायात्मकता आवान्तर सत्ता है, क्योंकि गुण व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। यहा इस सप्रतिपक्षपन को इन दोनों पद्धतियोंमे निरखते जाइये। एक तो एक ही पदार्थमें सप्रतिपक्षपना देखें और तत् और असत की अपेक्षा वह पदार्थ है और वह नहीं, किन्तु उससे भिन्न अनेक समस्त पदार्थ उनकी अपेक्षा से नहीं, यों सप्रतिपक्षपना दीखा।

आवान्तर सत्मे अर्थक्रियाकारित्व—उनमेसे प्रथम भिन्न-भिन्न उपदेश की पद्धतियोंसे सप्रतिपक्षपना दिखाया था, महासत्ता और आवान्तर सत्ता समस्त पदार्थोमें विस्तारसे व्यापने वाले सत्को महासत् कहते हैं और प्रतिनियत जिस किसी पर लक्ष्य हो उस वस्तुमें रहने वाले सत्को आवान्तर सत् कहते हैं। यों समझ लीजिये कि महासत्ता तो बोलने और समझने की बात है और आवान्तरसत्ता काम करने की बात है। जैसे गौ जाति और गौ पशु। गौ जाति तो बोलने और समझनेकी बात है और गौ पशु, उससे दूध निकलता है, सो व्यवहार करने की बात है। गौ जातिमें दूध न निकलेगा। दूध निकलेगा किसी प्रतिनियत गौ से। किसीको दूध चाहिये तो कहे जावो उस गावमें हजारों गायें हैं, उन सब गायोमें एक गोत्व सामान्य है, तुम तो सारे गावके मालिक हो जावो, तुम गौ जातिसे दूध निकाल लावो तो गौ जातिसे इसे दूध न मिलेगा। दूध दुहने जायेगा तो किसी प्रतिनियत गौ के पास जायेगा। इस ही प्रकार महासत् एक स्वरूप सादृश्य समझने की बात है। यहा अर्थक्रिया न होगी, अर्थक्रिया तो प्रतिनियत वस्तुमें होगी, आवान्तर

सत् मे होगी तो यह सत् महासत् रूप में है तो उसका प्रतिपक्ष है आवान्तर सत् और आवान्तर सत् रूप मे प्रस्तुत करे तो उसका प्रतिपक्षी है महासत्। तो यह महासत् सर्वपदार्थोंमे व्यापता है और आवान्तर सत् प्रतिनियत वस्तु मे व्यापता है।

गुणमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षता—महासत् समस्त व्यापक रूपमें व्यापता है और आवान्तर सत् प्रतिनियत रूपमे व्यापता है। पहिले द्रव्यदृष्टि करके प्रतिपक्षताको बताता था, अब यह गुणदृष्टि करके सप्रतिपक्षता कही जा रही है। समस्त व्यापकरूप सबमे व्यापने वाला जो सत् है वह महासत् है और प्रतिनियत एक शक्तिमे गुण मे व्यापने वाले सत् को आवान्तर सत् कहते है। वही पदार्थ सर्वगुणप्रचयाभेदात्मकतासे जो सत् मिला वह प्रतिनियत एक गुणमुखसे देखा गया सत् रूप नही है और जो प्रतिनियत एक गुणमुखसे देखनेपर जो सत विदित हुआ वह सर्वगुणप्रचयाभेदात्मकतासे देखा गया सत् रूप नहीं है। यो द्वितीय पीढ़ी पर महासत्ता व आवान्तर सत्ताकी पद्धति कही।

पर्यायमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षता—इस ही पद्धतिमे तीसरी पीढी पर कहा जा रहा है कि जो अनन्त पर्यायोंमे व्यापे वह है महासत्। और प्रतिनियत एक पर्यायमे व्यापे वह है आवान्तर सत्। द्रव्य, गुण, पर्याय इन तीन रूपोमे पदार्थका परिज्ञान किया जाता है। सो इन तीनों ही पद्धतियोंमें महासत् और आवान्तर सत् परस्पर प्रतिपक्ष है, यह कथन किया गया है।

द्रव्य व गुणरूपसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताका उपसहार—अब पुन'। अभिन्न पदार्थको एक ही पदार्थमें महासत् और आवांतर सत् निरखिये। एक पदार्थ जितना है वह समग्र है। अनन्तगुणात्मक अनन्तपर्यायात्मक उस समग्र वस्तु मे विस्तृत रूपसे व्यापन वाला महासत् है और उस प्रतिनियत वस्तुके उन समग्र विस्तारोमे से जब कभी एक धर्मकी मुख्यतासे देखा जाय तो उस समय वह आवांतर सत् हो गया जो उस व्यापने वाले महासत्मे से व्याप्य सत है। तो एक ही पदार्थमे यह महासत् और आवांतर सत् सप्रतिपक्ष है। अब उस ही एक पदार्थमें समग्र गुणोमे व्यापकर रहने वाला सत् महासत् है। तो जब हम उस पदार्थको किसी एक गुणकी मुख्यतासे परिचय करने जाते है तो वह आवांतर सत् हो जाता है। व्यवहार जितना चलता है वह आवांतर सत्से चलता है। समग्रगुणोको हम एक साथ बता दे, ऐसी कोई वचनपद्धति नहीं है। किसी गुणकी मुख्यतासे हम उस पूर्ण वस्तुको समझने और समझानेका यत्न किया करते हैं तो गुणरूपसे एक ही पदार्थसे यह महासत् और आवांतर सत् विदित

होता है।

पर्यायमुखेन सत्ताकी सप्रतिपक्षतके विवरणका उपसहार—एक ही पदार्थ में एक ही समयमे अनन्तपर्यायें हैं और भिन्न भिन्न समयोमे भी अनन्त पर्यायें हैं। एक समयमे तो यो अनत पर्यायें हैं कि प्रत्येक पदार्थ अनन्त-गुणात्मक होता है और जितने गुण होते हैं वे सब सदा कर्मठ रहते हैं। कोई गुण बेकार नहीं रह पाता। वह किसी न किसी परिणमनके रूपमे व्यक्त हुआ करता है। जैसे आत्मामें श्रद्धा, दर्शन, ज्ञान चारित्र, आनन्द आदि अनेक गुण हैं तो ऐसे ही उन सबके परिणमन भी एक साथ हैं। एक ही कालमें ज्ञानगुणका भी परिणमन है, दर्शन गुणका भी परिणमन है, सब गुणोंका परिणमन है, और भिन्न भिन्न समयोमे व्यतिरेकरूपसे अनेक परिणमन होते रहते है। उन पर्यायोमे और एक ही क्षणमे होने वाले अनन्त पर्यायोंमें व्यापने वाला जो सत है वह है महासत् और उस समयमे एक ही उस पदार्थके जिसके सम्बन्धमे महासत् देखा है, किसी एक पर्यायको निगाहमे रखकर उसका अस्तित्व देखें तो वह है आवातर सत्। इस तरह ये सत् सप्रतिपक्ष हैं।

पक्षस्थापनमे द्वैतपनेकी गुम्फितता--अस्तिकायके प्रकरणमे अस्ति शब्दका यहा अर्थ कहा जा रहा है। वैसे तो कुछ भी बात बोलो उसमें द्वैत भावकी बद्धता पडी हुई है। कोई कहे कि तुम्हारी यह बात बिल्कुल सच है तो क्या इसका अर्थ यह नहीं निकला कि यह बात झूठ नहीं है? दोनों भाव बँधे हुए हैं। कोई यह हठ करे, नहीं जी हमारी बात सच ही है, तो क्या यह बात नहीं है कि हमारी बात झूठ नहीं है? यदि यह न हो तो अर्थ निकल आया कि झूठ है और जब झूठका अर्थ निकल आया तो पहिली बात कहा रहेगी? तो कुछ भी बात बोलते ही उसका विरोधी भाव उसमे पड़ा हुआ है। 'आज मुझे मुनाफा हुआ है' इसका अर्थ क्या यह नहीं है कि आज मुझे टोटा नहीं रहा। टोटा नहीं रहा, मुनाफा रहा खैर इससे तो कुछ अन्तर लगा भी सकते हैं। मुनाफे का विरोधी शब्द यदि टोटा है तो यह विधि निषेधका द्वैतभाव गुम्फित है और टोटेका अर्थ दूसरा हो अमुनाफा, इसका अर्थ दूसरा हो तो मुनाफाके मुकाबिले 'अमुनाफा शब्द रखलो। कुछ भी बात बोलो वह अपने प्रतिपक्षी भावसे गुम्फित है।

प्रत्येक निरूपणमे स्याद्वादकी मुद्रा--प्रत्येक वस्तुमे, प्रत्येक कथनमे स्याद्वादकी मुद्रा गुम्फित है। कैसी जगह कोई माल बना तो माल बनाने वाले लोग उसमे अपनी सील लगा देते हैं पर यहा तो यह सारा माल पड़ा है, यह किसी जगह किसी ने बनाया नहीं है। यह अपने अपने स्वरूप से बना है। तो इसमे सील लगाने कौन आयेगा? इसमे सील वही वस्तु

लगा लेता है और वह शील है स्याद्वाद। प्रत्येक ज्ञान प्रत्येक व्यवहार स्याद्वादकरि गुम्फित है।

हितार्थीकी प्राथमिक और अन्तिम अनेकान्तता—इस स्याद्वादका निकटवर्ती शब्द है अनेकात। स्याद्वाद है वाचक और अनेकांत है वाच्य। स्याद्वादमे तो शब्दोंकी प्रभुता है और अनेकांतमे वस्तुस्वरूपकी प्रभुता है। अनेकांत कहते हैं जिसमे अनेक अंत पाये जाये। अंतका अर्थ है धर्म। सो जब तक व्यवहार मार्गसे अनेकातका परिज्ञान कर रहे है तब तक तो ज्ञाताके उपयोगमें यह अर्थ है कि इसमे अनेक पदार्थ है और जब अनेकांत का परिज्ञान करके कुछ अध्यात्ममे उतरता है, निर्विकल्प समाधिके उन्मुख होता है उस समय मानो अनेकातकी ज्ञाताके उपयोगमे यह व्याख्या बन गयी—'न एक' अपि अत यत्र सः अनेकांतः।' जहां एक भी धर्म नहीं है उसे कहते हैं अनेकांत। जहां रंच भी भेद नही है, गुणपर्यायकृत भी अन्तर नही है, केवल एक ज्ञानस्वरूपका अनुभव है वहां अतिम फलित स्थिति हो गयी। स्याद्वादसे साध्य है अनेक अंत वाला अनेकांत और उस अनेकांतका साध्य है एक भी अत न हो ऐसी निर्विकल्प स्थिति। यहा अस्ति शब्दसे पदार्थका स्वरूप कहा गया है कि ये पदार्थ सत् हैं और कायरूपसे सनाथ हैं, इस कारण ये ५ द्रव्य अस्तिकाय कहलाते है।

पदार्थोंका अस्तित्व—जगत्में समस्त पदार्थ ६ जातियोमे बटे हुए हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन समस्त द्रव्योंको विशेष-विशेष लक्षणोंसे पहिचानना यह भी भेदविज्ञानके लिए बड़ा सहायक है। किन्तु उसके साथ ही समस्त द्रव्योंमें पाये जाने वाले साधारण गुणोंकी दृष्टिसे सबको निरखना, यह भी भेदविज्ञानमे बहुत सहायक परिज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ है। है पर ही तो सारी बात और श्रृङ्गार चलता है। है तो मानना ही होगा। जीव है, पुद्गल है आदिक और इतना ही नहीं जीव अनन्त हैं सो वे सब अपने आपमें अपना-अपना है लिए हुए हैं। सो किन्तु यह हैपना सर्वपदार्थोंमे अविशेपता लिए हुए है। है की दृष्टिसे जीव और पुद्गलमे क्या अन्तर है?

अस्तित्वके सप्रतिपक्षत्वकी वस्तुत्व द्वारा साध्यता—भैया! अन्तर पडता है असाधारण गुणकी दृष्टिसे। पुद्गल मूर्तिक है, जीव चेतन है, अन्तर पड़ गया पर हैपने की दृष्टिसे क्या अन्तर? वस्तु है, आप हैं, हम हैं। वस्तु कुछ भी हो लेकिन वह वस्तु है ऐसा एकात न चलेगा। वस्तु अपने स्वरूपसे है पररूपसे नहीं है। दृष्टातमे जैसे इस पुस्तक को उदाहरणमे ले यह पुस्तक है। तो है इतने मात्रसे काम न चलेगा। यह पुस्तक है और यह चौकी, घड़ी, मेज, कुर्सी आदिक अपुस्तक नही हैं। यदि ऐसी

मप्रतिपक्षताका गुम्फन "है" के साथ न लगा हो तो "है" भी नहीं टिक सकता। यह है तो क्या यह पुस्तक है, यह चौकी है, यह सर्वात्मक है। तो फिर यह यह नहीं रहा तो अस्तित्वके साथ प्रतिपक्षका बना रहना आवश्यक है।

द्रव्यत्व का अर्थक्रियाकारिता में योग—अब वस्तुमें अस्तित्व भी हो और स्वरूपसे रहना, पररूप से न रहना ऐसा वस्तुत्व भी हुआ, इतने मात्र से भी कुछ काम नहीं बन सकता। क्या यह कूटस्थ ध्रुव है? परिणामी नहीं। यदि ध्रुव अस्तित्व हो, परिणामी न हो तो कुछ काम ही नहीं हो सकता, चलना फिरना, चहलपहल, बातचीत, संसारमार्ग, मोक्षमार्ग, जन्म लेना, मरना अथवा बना रहना—ये कुछ भी बातें नहीं हो सकती हैं। इस कारण यह भी निरखा जा रहा है कि प्रत्येक पदार्थ में परिणमनशीलता बसी हुई है। इसका ही नाम द्रव्यत्व है। यदि है तो निरन्तर परिणमता रहता है।

अगुरुलघुत्व द्वारा अर्थक्रियाकारिता की व्यवस्था—यह परिणमता है तो परिणमता रहो, ऐसा सीमारहित परिणमन क्या है कि किसी भी रूप परिणम जावे? नहीं, चेतन चेतन रूप ही परिणमेगा, अचेतन अचेतन रूप ही परिणमेगा। प्रत्येक पदार्थ अपने ही गुणोंमें परिणमेगा दूसरे मे नहीं। इस मर्म का सूचक है अगुरुलघुत्व गुण। कानून बनाकर लोकको उस पर चलाना एक तो यह बात और एक लोक का परम्परागत प्रचलन देखकर कानून बनाना, इन दो बातोंमें पहिली बात पास नहीं हो सकती, चल नहीं सकती, लेकिन अनेक गलतियों को सुधार कर परम्परासे जैसे सभ्य पुरुषोंमें चलता है उसको देखकर कानून गढ़ना, यह बात चलने लायक बात है।

चरणानुयोग का महत्त्व—चरणानुयोग में भी जो कुछ क्रिया करना बताया है परमार्थतः उसकी भी स्थिति यही है। ज्ञातृत्व की कला की परख बिना चरणानुयोग बनाकर जीवको उस पर चलाना, यह बात नहीं हुई है किन्तु ज्ञानी जीव जो कर्ममल भार से हलके हो जाते हैं उनकी कैसी प्रवृत्तियां चलती हैं, उन प्रचलनों को दृष्टिमें निरखकर चरणानुयोगमें गुम्फन हुआ है और इसी कारण चरणानुयोगकी विधियां जो निरूपित हैं उनके सहारे चूंकि ये निर्दोष कथन हैं सो ऐसा प्रयत्न करके भव्यलोक में प्राय चलना है। पहिले तो कुछ प्रवृति बना बनाकर चरित्र मे चलना होता है, फिर जो यथार्थ बात है वह चरित्र मे स्वयं फिट हो जाती है।

वस्तुगत तत्त्व का निरूपण—यह वस्तुस्वरूप भी कानून बनाकर

गढ़ा नहीं गया, किन्तु परमार्थमें जो बात पायी जाती है उसको समझनेके लिए उन्हें वचनोमे बद्ध किया गया है। समस्त पदार्थ हैं और अपने स्वरूप से हैं पररूपसे नहीं हैं—इन दो बातोकी मिलती है। यों दो मित्र युगल हैं ये पदार्थ हैं व स्वरूपसे हैं पररूपसे नहीं, यह है प्रथम युगल और ये पदार्थ परिणमते हैं और अपने मे ही परिणमते रह है दूसरे मे नहीं परिणमते हैं, यह हैं द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्व दो मित्रो की बात। ये चार साधारण गुण प्रत्येक पदार्थमे पाये जाते हैं।

पदार्थमे प्रदेशवत्त्व—भैया! इतने पर भी अभी व्यवहारमे उपयोगमे बात पूर्णतया घर नहीं कर पायी। छितरा-बितरा परिज्ञान रहा, बँधा हुआ नही हो सका। तो अब प्रदेशवत्व गुणके द्वारसे यह जानो कि ये समस्त गुण और परिणमन जहा होते है वे द्रव्य प्रदेशवान् हैं, केवल गल्प बात नहीं है, किन्तु है कोई पदार्थ प्रदेशवान् जहां यह साधारण और असाधारण शक्तियोका काम चल रहा है?

पदार्थमे प्रमेयत्व—सब कुछ है और ज्ञानमे न हो ऐसा भी नहीं है, सब प्रमेय है। न प्रमेय होता तो उनके सम्बन्धमे बात ही क्या चलती और ज्ञानका स्वरूप ऐसा है कि वह निर्दोष हो, निरावरण हो तो वह जानेगा। कितना जानेगा? यदि इसकी सीमा बना दी जाय तो उसका कारण क्या? ज्ञानने इतना ही क्यो जाना, इससे आगे क्यो नही जाना? या तो कुछ न जाने या सब जाने। बीचकी बात ज्ञानमें नहीं फबती। कुछ न जाने ज्ञान यह तो स्वरूप नही है। अपन समझ रहे हैं, सबके ज्ञानका स्वभाव जानना है, और सीमा रखकर जाने, यह युक्तिमे नही बैठती क्यों कि यह ज्ञान दौड़-दौड़कर वस्तुके पास जा-जाकर नही जानता। यदि इस प्रकार जानने का स्वरूप हो तो थोड़ा कहना भी जँचता कि जहां तक ज्ञान दौडेगा वहा तक जान जायेगा पर यह ज्ञान राजा अपने ही प्रदेशमें ठहरा हुआ अपनी कलासे सहज स्वभावको जाने जाता है। जो कुछ है वह जाना जाता है। तो यो सर्वपदार्थोंमे प्रमेयना अवश्य आ ही पड़ी।

साधारण और असाधारण गुणोकी अविनाभाविता—इस प्रकार इन ६ साधारण गुणोके साथ सदा प्रवर्तमान ये पदार्थ अपनेमे स्वतन्त्र-स्वतन्त्र परिणमन करते चले जा रहे हैं। साधारण गुणको अपने ज्ञानमे स्थान न दे तो असाधारण गुणसे ज्ञान और व्यवहारकी गाड़ी नहीं चल सकती और असाधारण गुणको अपने उपयोगमे स्थान न दे तो केवल साधारण गुणोंकी गाडी नहीं चल सकती। इस कारण यह सदा महासत् और आवांतर सत् ऐसे प्रतिपक्षपने को लिए हुए ही हैं।

साधारण व असाधारण गुणोकी अविनाभाविताका विवरण—पदार्थमे

साधारण गुण न हो तो असाधारण गुण क्या करेगा ? आत्मामें ज्ञानगुण है ? हा है, और साधारण गुण माने नहीं तो, न परिणमन होगा, न सत्ता रहेगी, न कोई आधार जँचेगा, फिर तो उन्मत्त कल्पना ही जायेगी। यदि साधारण गुण ही माने गए और असाधारण स्वरूप कुछ न तका तो द्रव्यत्वसे बना क्या ? द्रव्यत्वका निर्णय हुआ क्या ? तो साधारण और असाधारण गुणोंकी परस्पर सम्बद्धता होती है और हैं ये प्रतिपक्षी भाव, ऐसी ही सामान्य सत्ता और आवांतर सत्ता इसका एक पदार्थमें सम्मिलन है। साधारण गुणोंका प्रतिनिधि है महासत्ता और असाधारण गुणोंकी प्रतिनिधि है आवांतर सत्ता। ऐसे यथार्थ स्वरूप सहित पदार्थोंका परिज्ञान करना हित पथमें गमन करनेके लिए आवश्यक है।

षड्द्रव्यरत्नमाला—यह ६ द्रव्योंकी रत्नमाला भव्य जीवोंके कंठमें आभरणके लिए शोभाके लिए हो जाती है। ज्ञानीकी शोभा ज्ञानसे है, और ज्ञानका रूप बनता है इन समस्त विश्वके पदार्थोंके जाननेसे तो ये सब पदार्थ इस ज्ञानकी शोभाके लिए हैं। पदाथ सम्बन्धी यह सामान्य विवरण करके अब यहा यह बतला रहे हैं कि कौनसे द्रव्यमे कितने प्रदेश हैं ?

संखेज्जासखेज्जाणतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असखदेसा हु ॥३५॥
लोयायासे ताव इदरस्स अणतय हवे देहो।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा ॥३६॥

परिज्ञानका प्रयोजन मोहनिवृत्ति--जिन पदार्थोंसे हमे मोह तोडना है, अलग होना है उन पदार्थोंका परिज्ञान होना भी तो आवश्यक है। जिसमें मोह फँसा है उन पदार्थोंको हम यथार्थ न जान सके तो मोह हटेगा कैसे ? ये धन वैभव मकान ये सब अचेतन पुद्गल स्कध हैं। समानजातीय द्रव्य पर्यायें हैं। बहुतसे अणु मिल करके यह मायारूप रख रहे हैं, ये बिखर जायेगे। भले ही थोड़ासा इतना अन्तर आ जाय कि बादल जरा जल्दी बिखर जाते हैं और यहाके ये पदार्थ कुछ देरमे बिखरते हैं। पर बिखरने की प्रकृति ये सब बनाए हुए है।

पदार्थोंकी क्षणभगुरता—पुराणोंमें कथन आता है, कि कोई राजा छत पर बैठा हुआ आसमानमे महराते हुए बादलोंके सौन्दर्यको देख रहा था, इतनेमें एक जगह बादलोंकी बडी उत्तम मदिरकी जैसी शिखर दीखी। वे बादल इस रूप हो गए थे कि मानो मदिरकी शिखर बन गयी हो। वह दृश्य उस राजाको बडा सुहावना लगा। सोचा कि मै इसका चित्र बना

लूँ। वह राजा चित्र बनानेकी कला जानता था। सो नीचे कागज पेंसिल लेनेके लिए राजा चला गया। जब कागज पेंसिल लेकर राजा आया तो देखा कि सारे बादल छितर बितर हो गए हैं। उसको देखते ही उसे वैराग्य आया। जैसे ये बादल अभी मंदिर और शिखरके रूपमें थे, थोड़ी ही देर में ये सब बिखर गए, यों ही यह शरीर मिला है, यह समागम मिला है, थोड़ी देरको अपने आकार प्रकारोंके रूपमें ये प्राप्त हैं। कुछ समय बाद ये सब बिखर जायेंगे।

अतीत घटनासे भावी घटनाके अंदाजकी सुगमता—वे बाबा दादा जिनका बड़ा प्यार था हम आपके प्रति, आज वे कहां सामने हैं? अब व्यवहारसे ऐसा जाना जाता है कि पिताको पुत्र पर जितनी प्रीति हो सकती हैं उस से कहीं अधिक प्रीति बाबाकी पोते पर होती है। कैसे जाने? पहिले तो एक सरकारी निर्णय देखो, बाबाकी जायदाद पर नातीका अधिकार रहता है उस पर बापका अधिकार नहीं रहता। बाप अपनी जायदादका कुछ भी गड़बड़ कर सकता है मगर बाबाकी जायदाद पर बाप क्या गड़बड़ कर सकता है? करेगा तो सरकारमें बाप पर नालिश की जा सकती है। बाबाकी जायदाद पर नातीके अधिकारका कानून बना हुआ है। पुराणोंमें प्रायः नातीका नाम वह रखा जाता था जो बाबाका नाम था। जैसे मानो कोई सत्यंधर है और उसका पुत्र जीवन्धर है तो जीवन्धरका पुत्र सत्यंधर नाम पायेगा। फिर मोहकी बात देखो बाबाको नाती पर मोह ज्यादा होता होगा, इसका हमें कुछ परिज्ञान नहीं है, आप लोग ही बता देंगे तो समझ जायेंगे। तो ऐसी ही कई बातोंसे जाना जाता है कि बाबाको नाती पोतों पर प्रीति पुत्रोंसे भी अधिक होती है। तो वे बाबा रहे कहां जिनका अपने पर ऐसा विलक्षण प्यार बना था। उससे ही अंदाज कर लो, अपना भी ऐसा ही हाल होगा।

परमें आत्मीयताकी बुद्धि उन्मत्तचेष्टा—भैया! जो कुछ भी समागम प्राप्त है वह सब बादलोंकी तरह उतनी जल्दी न सही, कुछ देर लगे सब बिखर जायेंगे। तो ये दृश्यमान स्कंध, द्रव्य पर्यायें समानजातीय द्रव्य पर्यायें हैं। जब ये अनेक द्रव्योंसे मिलकर मायारूप रख रहे हैं तो जो मिले हैं वे विघट जायेंगे। यहां कुछ भी मोह किए जाने के योग्य नहीं है ये चेतन पदार्थ मनुष्य, घोड़े, हाथी, परिजन कुटुम्ब ये सब एक एक जीव हैं और अपनी योग्यतानुसार अपने कर्मोंके अनुसार अपनी सृष्टि करते चले जा रहे हैं। इनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे चलते फिरते लोगोंको कोई पागल अपना मान ले और उनके उपयोगमें दुःखी होता फिरे, इसी तरह एक गतिसे दूसरे गति को चलते फिरने वाले इन कुटुम्बी

जनों को कोई अपना मान ले तो उनके उपयोगपर, उनके मनके प्रतिकूल होने पर दुःखी होगा।

ज्ञानी व मोही की वृत्ति मे अन्तराशय का एक दृष्टान्त—जो वस्तु का यथार्थ स्वरूप है उस पर कायम रहने वाला उपयोग क्लेश नहीं पा सकता है। हम सही बात पर कायम नहीं रहते हैं। इतना ही अच्छा है कि दृष्टि तो बनी है कि उस पर कायम रहना चाहिये और मनमें भाव होता है, पर ईमानदारीसे यह बात यदि सत्य है कि हमारी दृष्टि जगी तो है कि हम वस्तुके ऐसे स्वतंत्र स्वरूपके परिज्ञान पर कायम रहें। यदि इतनी दृष्टि भी जगी तो उसे वर्तमान समागममें मोहका क्लेश नहीं रह सकता है। काम तो एक दूकानदार भी करता है और एक सर्विस करने वाला भी करता है पर मोह सर्विस करने वाले को नहीं है। अपनी ड्यूटीका अथवा नियत काम कर लिया, छुट्टी पायी, मोह नहीं रहा, पर दूकानदारीके कार्यमें प्रायः मोह बना रहता है। सो रहे हैं, अधनींदमें भी दूकानकी बात चक्कर काट रही है। ऐसे सर्विस करने वालेके चित्तमें चक्कर नहीं काटती है। यह बात कह रहे हैं एक दृष्टांतके लिए ज्ञानी और मोहीकी वृत्तिके परिक्षणकी बात।

ज्ञानी के परिणमनके प्रति उपेक्षा—यदि वस्तुस्वरूप पर हमारी दृष्टि कायम होने को है तो अन्यपदार्थका विकल्प चिन्तन चिन्ता रूपमें न रहेगा उसमें ऐसा साहस जगेगा कि कोई जीव, कोई पदार्थ यों परिणमा तो भला, यों परिणमा तो भला, अन्तरमे आकुलता न मचायेगा। इन ६ द्रव्योंका स्वरूप जाननेका फल यह मिलता है कि इसकी अपेक्षा जगती है, मोह हटता है, आकुलता दूर होती है। उन ही ६ द्रव्योंके सम्बन्धमे प्रदेशत्वता के रूपमें यहा यह बताया जा रहा है कि किस पदार्थके कितने प्रदेश होते हैं?

प्रदेशमुखेनवस्तुका व्यवाहारिक विशद बोध—इन द्रव्योंमे कितने प्रदेश होते हैं यह कथन कर रहे हैं। प्रदेश किसे कहते हैं? पहिले यह समझ लीजिये तो यह समझमे विशेष आयेगा कि यह पदार्थ इतने प्रदेशवान् है तो इसका यह मतलब है शुद्ध पुद्गल परमाणुके द्वारा जितने आकाशका स्थल रोका जा सकता है उसका नाम प्रदेश है? प्रदेश परमाणुके बराबर है और परमाणु एक प्रदेशके बराबर है। इस तरह पुद्गल द्रव्यमे सख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं।

पुद्गलद्रव्यकी प्रदेशवत्ताके सम्बन्धमे पारमार्थिक व औपचारिक निर्णय—पुद्गल द्रव्यमे वस्तुत तो एक ही प्रदेश है क्योंकि पुद्गल एक परमाणु का ही नाम है, किन्तु परमाणु परस्परमे मिलकर ऐसा बंधनबद्ध हो जाता

है कि वह सजातीय अनेकद्रव्य पर्यायात्मक हो जाता है। तब ऐसे छोटे स्कंध हैं कि कोई संख्यात प्रदेश वाले हैं, कोई स्कध असंख्यात प्रदेश वाले हैं और कोई अनन्त प्रदेश वाले हैं। सख्यात दो से शुरू होना है, गिनती एकसे शुरू नहीं होती है। वह तो एक है, गिनती शुरू होती है २ से। तो जघन्य संख्यात २ का नाम है और उत्कृष्ट संख्यात अनगिनते की तरह है अर्थात् जघन्य असंख्यातमे एक कम कर दिया जाय तो उत्कृष्ट सख्यात हो जाता है। असंख्यात भी नाना प्रकारके होते हैं और अनन्त भी कई प्रकारके होते हैं।

स्कन्धोकी विभिन्न प्रदेशिता—किसी भी स्कन्धरूप पुद्गलद्रव्यमें उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश नहीं होते हैं फिर भी अनुत्कृष्ट अनन्त प्रदेश होते ही हैं। दिखनेमें जितने पुद्गल आते हैं वे अनन्तप्रदेशी पुद्गल हैं सख्यात प्रदेशी और असंख्यातप्रदेशी भी। पुद्गल दिखनेमें नहीं आते। अब जान लीजिए कि सबसे छोटा स्कध जो आखो दिख सकता है उसमें अनन्त परमाणु समाये हैं। एक परमाणु कितना छोटा होता होगा? यह व्यवहार पर्यायमें नहीं बताया जा सकता है। एक युक्तिसे ही समझा जायेगा। पुद्गलद्रव्य परमार्थत: एकप्रदेशी है और उपचारत: कोई संख्यातप्रदेशी है, कोई असंख्यातप्रदेशी है और कोई अनन्तप्रदेशी है।

आकाशका औपचारिक भेद व प्रदेशवत्त्व—एक जीव, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये असंख्यातप्रदेशी होते हैं। आकाशद्रव्य अनन्तप्रदेशी होता है, पर उस आकाशके प्रदेशमें दो विभाग कर लिए जाते हैं। जितने आकाश में समस्त द्रव्य रहते हैं उतनेका नाम है लोकाकाश। और उससे परे समस्त आकाश अलोकाकाश कहलाता है। जहा आकाश ही आकाश है अन्य कोई द्रव्य नहीं है उसे लोकाकाश कहते हैं। अलोकाकाशके तो अनन्त प्रदेश हैं और लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं। वास्तवमे ये दो भेद हैं नहीं, आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, पर इतने बडे विस्तार वाले आकाशमें जो कि एक अखण्ड है उसमें द्रव्यके रहने और न रहनेकी अपेक्षासे भेद किया गया है। कोई कहे कि आकाश भी अनन्त मान लो। एक-एक प्रदेशपर एक-एक आकाश है। सो आकाश यों अनन्त नहीं माना जा सकता है क्योंकि आकाशका कुछ भी एक परिणमन है वह अनन्त प्रदेशोंमे यहीका वही एक परिणमन होता है।

एक पदार्थका परिमाण—द्रव्य एक उतना कहाजाता है कि जो एक परिणमन जितनेमें पूरेमे होना ही पडे और जिससे बाहर परिणमन कदाचित न हो, उतनेको एक कहा करते हैं। इस परिभाषाके अनुसार जीवमें निरखलो—एक जीव उतना है कि एक परिणमन जितनेमें होता है

और अलोकाकाश । लोकाकाशमे धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य सदा विस्तार में भी एक प्रमाण वाले हैं । जितना बड़ा लोकाकाश फैला हुआ है उतना ही बड़ा यह धर्मद्रव्य फैला है और उतना ही बड़ा अधर्मद्रव्य फैला है, किन्तु एक जीव द्रव्य असख्यातप्रदेशी होकर भी विस्तारसे लोकाकाशके बराबर केवल एक समयमे केवलीसमुद्घातके लोकपूरण अवस्थामे होता है और कभी भी नहीं होता है । तो इस प्रकार धर्मद्रव्य एक ही है, अधर्म-द्रव्य एकही है तथा एक जीव, इसमें असख्यात प्रदेश होते हैं । बाकी जितने असीम अलोकाकाश हैं उनके अनन्त प्रदेश हैं । यह तो हुआ ५ अस्ति-कायोका वर्णन । अब एक द्रव्य रह गया काल, उसका वर्णन सुनिये । काल-द्रव्य एकप्रदेशी है और इसी कारण उसे अस्तिकाय नहीं कह सकते हैं किन्तु द्रव्यरूप अवश्य है अर्थात् है और परिणमता रहता है । द्रव्यत्वके नाते जो भी बात चाहिए वह सब कालद्रव्यमे है पर अस्तिकायपना नहीं है । एक एकप्रदेशी कालाणु एक-एक लोकाकाशके प्रदेश पर अवस्थित है ।

पदार्थोंके परिज्ञानसे श्रृङ्गार व आत्महित शिक्षा—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी प्रधानतासे यदि अणुवोको सोचा जाय तो द्रव्याणु तो परमाणु है, क्षेत्राणु आकाशका एक प्रदेश है, कालाणु कालद्रव्य है और भावाणु जीवद्रव्य है । यहां प्रधानतासे और मर्मको समझनेके लिए ऐसा कहा जा रहा है । यह ६ द्रव्योका समस्त विवरण श्रृङ्गारके लिए भी है और परमार्थ शिक्षाके लिए भी है । लोकश्रृङ्गार क्या है कि इन ६ द्रव्योके विषयमे विविध ज्ञान हो और वह कंठस्थ हो और उसे हम बोल सके, बता सकें तो यह ६ द्रव्योके द्वारसे पुरुषका श्रृङ्गार बना है और परमार्थ शिक्षण क्या है कि हम समस्त द्रव्योंके सम्बन्धमे यह जान जाये कि प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है, अपने आपमें परिपूर्ण हैं, अधूरा कोई नही है । प्रत्येक परिणमते रहते हैं । ऐसा स्वतत्र स्वरूप निरखकर हम समस्त परसे विरक्त हो और ज्ञाना-नन्द रसमे मग्नता पायें, यह है सर्वद्रव्योके परिज्ञानसे प्राप्त होने वाली शिक्षा ।

व्यवहारपूर्वक निश्चयप्रतिबोध—इस विवरणके परिज्ञानमे वर्तमान पुरुष व्यवहारमार्गको जानता है और व्यवहारमार्ग जानकर फिर शुद्ध मार्गका प्रतिबोध पाता है । ज्ञानी पुरुषके उस धर्ममार्गके प्रचारके प्रति भी बड़ा धैर्य है । किस पदवीमे किस पुरुषका किस विधिसे अध्ययन और उपदेश होना चाहिए, यह ज्ञानीकी दृष्टिसे ओझल नहीं है । एक निश्चय मार्गसे हमने जान लिया और सभी जीवोको एक उस निश्चयमार्गसे ही प्रतिबोधा जाय, सिखाया जाय तो कोई यदि यह प्रश्न करदे उस व्यक्तिसे कि क्या आप भी प्रारम्भसे इस ही निश्चयस्वरूपसे प्रतिबोधको प्राप्त हुए हैं ? उत्तर क्या देगा ? बच्चे थे, मा बापके साथ दर्शनका कौतूहल

रखते थे। बाहर अन्दर दिगम्बरपन लिया और फिर [illegible] समागमसे लाभ लिया और सर्व प्रकार व्यवहारकी बातोंमें कुशल बने अपनी शक्ति अनुसार और फिर उस निश्चयमार्गको भी जाने। तो जिस चीजका विधान हुआ करता है जिस पद्धतिसे पद्धतिका प्रयोग करें तो उसमें सफलता होती है, पर व्यवहार मार्ग जाने, सर्व प्रकार पर्याय और व्यवहारका विवरण समझे, यहां निश्चयका मर्म भर पाये तो यह हमारा उद्बोधन हमें सफल होगा।

परिज्ञानका प्रयोजन यथार्थ लगाव व अलगावकी पूर्ति—यह समस्त विवरण एक ज्ञानकी स्वच्छताके लिए है। जितना विशद बोध होगा उतना ही जिससे हमें हटना है उसका हटाव उत्तम होगा और अपने आपमें लगाव होगा। परसे लगाव और अपनेसे अलगाव कुछ वस्तुगत नहीं है किन्तु इस जीवने बाह्य पदार्थोंसे तो मोहवश लगाव लगाया है और अपने आपकी ओरसे अलगाव बना हुआ है। यहां भी कुछ परसे लगाव नहीं है और अपनेसे अलग नहीं है, पर उपयोगमें तो यह परसे लगा है और अपनेसे अलगाव है, जुदा है। जब ज्ञानप्रकाश होता है तब परसे तो अलगाव हो जाता है और अपने आपमें लगाव हो जाता है। कितना बहुत छोटासा कार्य है मूलमें कि जिस कार्यके विस्तारमें संसार और मोक्ष जैसा महान अन्तर हो जाता है।

मुक्तिका उपक्रम—मोक्षमें हम कैसे लगें, धर्मपथ हमारा कैसे बने? इसका उपाय बहुत थोड़े शब्दोंमें कहा जाय अथवा कोई कहे कि मुझे बहुतसी बातें न बताओ। मुक्तिके लिए तो मुझे केवल एक छोटीसी बात बता दो, जिसका आश्रय लेकर हम सङ्कटोंसे मुक्ति पानेमें शीघ्र सफल हो सकें तो वह उपाय एक बहुत छोटासा है यथा कि 'जितपिट्ठा तितदिट्ठा जित दिट्ठा तित पिट्ठा।' इतना ही उपाय है। जिस ओर हमारी पीठ इस समय बनी है उधरको देखना है और जिस तरफ देख रहे हैं उस तरफ पीठ करना है। उपयोग दृष्टिकी बात कही जा रही है। हम अपने आत्मस्वरूपकी ओर तो पीठ किए हुए हैं तो उस ओर तो हमें देखना है और बाह्यपदार्थोंकी ओर दृष्टि किए हुए हैं सो उस ओर पीठ करना है। ये बाह्य पदार्थ खूब भले भले दिख रहे हैं, ये मेरे हैं ये दूसरेके हैं सो इन बाह्य पदार्थोंकी ओर पीठ करना है और अपने आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि करना है।

परिचितकी उपासना—जैसे आप लोग यहां बैठे हो। इनमें से जिन्होंने श्रवणबेलगोलमें बाहुबलिकी प्रतिमाके दर्शन किये हैं उनसे कहा जाय कि उसको निरख लो तो एक क्षणमें ही वे निरख लेंगे क्योंकि उनकी

देखी हुई वह चीज है। इसी तरह ज्ञानानन्दस्वरूप जिसके परिचयमें आया है, जिसने सहज आनन्दका अनुभव किया है उसे जब कभी मनमें आये तो इस ज्ञानानन्द रसमें मग्न होनेमें विलम्ब नहीं लगता। कितना ही बाह्य झंझटोंमें आप पड़े हो, एकदम ज्ञानानन्द स्वरूपमें आपका उपयोग लग जाता है और ज्ञानानन्द रसका अनुभव होने लगता है।

आनन्दवृत्तिका उद्यम—जैसे मोटरगाड़ी आगे निःशंक चले सो वे पेट्रोल आदि डालकर पहिलेसे ही ठीक कर लेते हैं ताकि फिर आनन्दसे बढ़ाए चले। ऐसे ही आनन्दकी गाढी बढ़ानेके लिए, चलानेके लिए हम अपने इस ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि करने रूप कुछ तैयारी बना लें, फिर तो उसके स्मरणके प्रसादसे भी शेष समय हमारे अनाकुलतामें चल सकते हैं। यों ६ द्रव्योंका वर्णन उनसे अपनेको हटानेके लिए और अपनेमें अपनेको लगाने के लिए किया जा रहा है।

अजीवाधिकारमें ४ प्रकारके जीवोंका न आतिसक्षेपसे, न अति विस्तारसे वर्णन किया गया। अब उस वर्णनका इस अंतिम गाथामें उपसंहार किया जा रहा है। उपसंहार कहते हैं जो कुछ कहा गया है उसमें रही सही बातको अथवा उसका किसी सक्षिप्त तत्त्वको कह देना, सो उपसंहार है। कथनको सकोच करके मूल मुद्देको दर्शाते हुए वर्णन करने को उपसंहार कहते है। अजीव द्रव्यके व्याख्यानके उपसंहारमें अब यह गाथा अवतरित होती है।

पुग्गलदव्व मोत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥२७॥

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेषके द्रव्य मूर्तिपनासे रहित हैं। जीव चैतन्यस्वभाव वाला है और शेष द्रव्य चैतन्य गुणसे रहित हैं।

लक्षणसे जातिका प्रतिबोध—पदार्थ तो अनन्त होते हैं, परतु पदार्थ की जातियां बनाकर यहा मूलभूत द्रव्यकी ६ जातिया बतायी गयी हैं। जाति उसे कहते हैं कि जिसमें विवक्षित सभी पदार्थ आ जाएँ और अविवक्षित कोई पदार्थ न आए। जीवद्रव्य जैसा स्वलक्षणात्मक है उस स्वलक्षणकी दृष्टिमें जितने भी जीव हैं सबका ग्रहण हो जाता है और जीवसे अतिरिक्त किसी भी द्रव्यका ग्रहण नही होता। इस ही को पहिचान कहते हैं, लक्षण कहते हैं। जहां अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव—ये तीनों दोष नहीं रहे ऐसे लक्षणों को पदार्थका शुद्ध लक्षण कहा करते हैं।

लक्षणका अव्याप्तिदोषसे लक्षणाभासपना—अव्याप्ति दोपका अर्थ है 'न व्याप्ति इति अव्याप्ति।' जो न व्यापे, न रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं अर्थात् जो समस्त लक्ष्यमें न रहे उसका नाम अव्याप्ति है। इस ही को

इस भाषामें कह सकते हैं कि जो लक्ष्यके एक देशमें रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं, किन्तु शब्दोंके अनुसार अर्थ यह नहीं है। यह तो फलितार्थ है, शब्दार्थ यह है कि जो समस्त लक्ष्यमें न रहे उसे अव्याप्ति कहते हैं। जैसे पशुकी कोई पहचान पूछे कि बतावो पशुका लक्षण क्या है और कोई उत्तर दे दे कि पशुका लक्षण सींग है। तो एकदम सीधा सुननेमे तो लगेगा कि ठीक ही तो कहा है, पशुवोंके ही तो सींग होते हैं, किन्तु सींगरूप लक्षण समस्त पशुवोंमें नहीं पाया जाता है। इससे पशुवोंकी पहिचान सींग बताना युक्त नहीं है। पहिचान वह होनी चाहिए जो समस्त लक्ष्यमे रहे और अलक्ष्य एकमें न रहे उसे कहते हैं लक्षण। वैसे पशुका लक्षण क्या हो सकता है, इस बाबत कभी ध्यान ही नहीं दिया, पर यह सम्भव है कि जिसके चार पैर होते हैं सो पशु है। यदि यह बात सही है कि पशुके सिवाय और किसीके चार पैर नहीं होते और सब पशुवोंके चार पैर होते हैं तो यह लक्षण सही बन जायेगा। जीवका लक्षण क्या है? कोई कहे कि जीव का लक्षण है राग, खाना पीना, चलना, बैठना ये ही जीवके लक्षण हैं। तो यह लक्षण निर्दोष नहीं है क्योंकि रागादिरूप लक्षण सब जीवोंमे नहीं पाया जाता है। शुद्ध आत्मावोंमें राग कहा है? तो अव्याप्ति दोष नहीं हो और अतिव्याप्ति दोष नहीं हो, साथ ही असम्भव दोष नहीं हो तो वही लक्षण सही सही माना जाता है और उससे ही फिर जातिया बनती हैं। जातिया लक्षणोंसे ही प्रकट हुआ करती हैं।

अतिव्याप्ति दोषसे लक्षणका लक्षणाभासपना—कोई पूछे कि गायका लक्षण क्या है? और उत्तर दिया जाय यह कि गायका लक्षण सींग है तो थोड़ा शब्द सुननेमें तो ठीकसा जँच जाता है। ठीक ही तो कह रहे हैं कि गायके सींग होते हैं। पर यह बात नहीं कही जा रही है। गायका लक्षण सींग बताया जा रहा है कि जहा-जहा सींग मिलें उस उसको गाय समझना तो यह लक्षण सही तो नहीं है क्योंकि सींग लक्ष्यरूप गायके अलावा अन्य पशुवोंमें भी रहा करता है। भैंस, बकरी, बैल, भेड, बारहसिहा आदि अनेक पशुवोंके सींग रहा करते हैं। तो यह अतिव्याप्ति दोषसे दूषित है। अतिव्याप्ति कहते किसे हैं? जो अति मायने अधिक व्याप्ति मायने रहे। जो लक्ष्यके अलावा अलक्ष्यमे भी रहे उसे अतिव्याप्ति कहते हैं। तो गायका सींगरूप लक्षण है क्या? नहीं क्योंकि गायके अतिरिक्त अन्य पशुवोंमे भी सींग पाये जाते हैं। ऐसा यह अतिव्याप्ति दोष है। जीवके सम्बन्धमे पूछा जाय कि जीवका लक्षण क्या है? और कोई कहे कि जीव का लक्षण है अमूर्तिकता। रूप, रस, गध, स्पर्शका न होना। तो जरा जल्दी सुननेसे अनेक लोगोको ऐसा लगेगा कि यह ठीक तो कह रहे हैं। [illegible] होते हैं, पर यह नहीं कहा जा रहा है,

लक्षण बांधा जा रहा है। जो-जो अमूर्त हो वह वह जीव है--ऐसा बंधन किया जा रहा है। जीव अमूर्त है, यह तो ठीक है, पर जीवका लक्षण अमूर्त नहीं हो सकता क्योंकि अमूर्तपना जीवके अतिरिक्त अलक्ष्यमे भी पहुंच गया। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य ये भी अमूर्तिक है।

असंभव दोष--कोई कहे कि जीवका लक्षण है भूतचतुष्टयसे जो उत्पन्न हो जाता है यह बिलकुल ही असम्भव है। जैसे कोई पूछे कि मनुष्य का लक्षण क्या है और कोई उत्तर दे कि मनुष्यका लक्षण सींग है। तो क्या किसी मनुष्यके आपने सींग देखा है ? यह लक्षण तो बिलकुल ही असम्भव है, जहां तीनो प्रकारके दोष नही होते है, ऐसे लक्षणसे जाति बना करती है।

पदार्थका निर्दोष लक्षण स्वभाव--जीवकी जाति कैसे पहिचानी जाय ? उसकी पहिचान है जो उसका स्वभाव है। जहां-जहा चेतन है वे सब जीव हैं। पुद्गलका लक्षण बताया है रूप, रस, गंध स्पर्शमयता। यह लक्षण पुद्गलको छोड़कर अन्य द्रव्योमे नहीं पाया जाता है। परमाणु हो या स्कंध हो सर्वत्र पुद्गलमे रूप, रस, गंध, स्पर्शमे पाये जाते हैं। चाहे कहीं मालूम पड़े अथवा न मालूम पडे या कही चारोंमे से एक दो मालूम पडे, शेष न मालूम पडे। यह मालूम पड़नेकी बात है किन्तु समस्त पुद्गलो मे ये चारो गुण नियमसे हुआ करते हैं। धर्मद्रव्यकी जाति है गति-हेतुत्व, अधर्मका लक्षण है स्थितिहेतुत्व, आकाशका लक्षण है अवगाहन-हेतुत्व और कालद्रव्यका लक्षण है परिणमनहेतुत्व। यो सर्व पदार्थोंकी जातिया ये ६ होती हैं। उनमेसे जीव तो एक है और अजीव ५ हैं।

वस्तुस्वरूपकी अनुसारिता--यह अधिकार है अजीव द्रव्यका। उक्त अजीवमे से मूलपदार्थोंमे सबसे प्रथम बताया गया है पुद्गल। जो सुगम जाना जा सके उसको वर्णनमे पहिले लिया करते है। इन अजीव पदार्थोंमे से पुद्गल अति सुगमतया जाना जाता है। उस पुद्गलमे मूर्तपना है। रूप, रस, गंध स्पर्शमयता है और पुद्गलको छोड़कर शेष पदार्थ सब मूर्त हैं। कानून बनाकर वस्तु नहीं बताई जा रही है किन्तु जैसी वस्तु है उस का ज्ञान करनेके लिए उसके अनुरूप वर्णन किया जा रहा है। बहुतसे व्यवहार ऐसे हैं कि परम्परागत व्यवहारको मानकर चला जाता है तो उसमें असफलता नहीं मिलती है। धर्मके मार्गमे, सभ्यताके पथमे बहुतसे पुरुषोंके द्वारा छन-छनकर यह स्पष्ट रूप मिल रहा है। तो वस्तुओमे जो स्वरूप पाया जाता है उस स्वरूपको दृष्टिमे लेनेके लिए उसके अनुरूप वर्णन होना यह तो है सफलताका साधन और हम सब कुछ स्वरूप गढ लें, बना ले और उसके अनुसार बाहरमे व्यवस्था करे, प्रबंध करे स्वरूप देवें तो वह सब प्रायः असफल होगा।

ज्ञेयोंमे जीव व पुद्गलकी प्रमुखता—इन समस्त पदार्थोंमे पुद्गल द्रव्य तो मूर्तिक है और शेषके सर्व द्रव्य अमूर्त हैं। तो मूर्त और अमूर्तके नाते से एक ओर तो मूर्त पुद्गल बैठा है और दूसरी ओर सब द्रव्य आ गए, इस तरह जब चेतनत्व और अचेतनत्वका मुकाबला करें तो चेतनत्व मिलेगा जीवमें और शेष द्रव्योंमें मिलेगा अचेतनत्व। जीव चेतन है, जाननहार, देखनहार है और अजीव कोई भी न जानता है न देखता है। बस अशुद्धता और शुद्धताके मुकाबलेमे विचार किया जाय तो अशुद्धता केवल जीव और पुद्गलमे मिलेगी। पुद्गलमे तो स्वजातीय बंधन की अपेक्षा अशुद्धता है और जीवमें विजातीय बंधनकी अपेक्षा अशुद्धता है। पुद्गल, पुद्गलके संयोगमे अशुद्ध हो जाता है और जीव पुद्गलके संयोग में अशुद्ध हो जाता है। भैया! जीव और अजीवका स्पर्श, सम्बन्ध कहीं नहीं होता है, फिर भी मोही जीव प्रायः जीव और अजीवको एकमें मिलानेके प्रयत्नमें रहता है।

मोहनिद्रामे छोटे वडेकी कल्पनाका स्वप्न—यह मोही जीव अज्ञानमे हठ किए रहता है और इसी व्यामोहके फलमे न कुछ जरा-जरासी बातों में विवाद और कलह हो जाते हैं। संसारमें सुख है कहां? जो बड़ा है वह हुकुम दे देकर दुखी होता है और जो छोटा है वह हुकुम मान-मानकर दुखी होता है। यहां यह सोचा जाय कि छोटे लोग तो दुखी रहते हैं और बडे लोग सुखी रहा करते हैं तो ऐसा कुछ नहीं है। जैसे छोटे आदमी दुखी हैं, बल्कि किन्हीं अपेक्षावोंसे छोटेकी अपेक्षा बडा दुखी अधिक है। छोटेकी लालसा तृष्णा उनकी कल्पनाकी सीमा थोड़ी है। इतनेकी सिद्धि हो गई तो मौजसे गाते फिरते अपना समय बिताते हैं और कहो बडेके, चूँकि तृष्णा अधिक है सो उस तृष्णाके कारण रात दिन चैन नहीं मिलती है।

लोकवैभवसे छोटे वडेका अनिर्णय—भैया! बताओ जरा बड़ा कहेंगे किसे? धनमें बड़ा होना है कोई ऐसा माने तो आप ही लोग पंचायत करके कमेटी करके हमको फैसला दे दो कि इतने रुपये हों तो उसे बड़ा कहते हैं या धनी कहते हैं। जो फैसला करे वह बिल्कुल सही करे। कोई विचार कर सकता हो तो खूब विचार करके बता दे कि बडा उसे कहते हैं। किसीके पास करोड रुपयेका वैभव हो तो क्या उसे बड़ा कहेंगे? अरे उसके सामने किसी अरबपतिका वैभव रख दो तो वह करोडपति उसके सामने छोटा हो जायेगा। सभी अपनी कल्पनासे बडे बने हैं, पर यहा कोई बडा नहीं है।

संघर्षसे वडोकी सृष्टि यहां एक बात मर्मकी यह है कि कोई बड

बहुत बड़ी विपत्तियां सहनेके बादमें बन सकता है। एक बड़ा नाम उरका है जो उड़दकी दालसे बनता है। वह भी बड़ा कहलाता है। उस बड़े की कहानी सुनलो। पहिले तो दाल पानीमें भिगोते हैं, १० घंटे तकके लिए फुला देते हैं। बादमें उसको रगड़ते हैं हाथसे ताकि इसके छिलके निकल जायें। अभी दो ही कष्ट आए। फिर सिलबट्टेसे पीस-पीस कर चूर कर देते हैं और कजूस हों तो थोड़ी कुशल भी रहे, थोड़ा पानी डालकर कढ़ी बना लिया। क्योंकि उसमें घी कम लगता है। उसके बाद उसे खूब फेंटा, चार बातें अभी हुईं हैं, इसके बाद फिर उसकी शकल बिगाड़ कर गोल गोल कर लिया, यह हुई ५ वीं बात, फिर उसे कड़ाहीमें डालकर खूब सेंका। इसके बाद भी मन नहीं मानता, सो लोहेकी पतली सींकसे उसका पेट छेदकर देखते हैं कि कच्चा तो नहीं रह गया है। इतनी बातें होनेके बाद उसका नाम लोग बड़ा रखते हैं। तो अब समझलो कि बड़ा बननेके लिए कितने कष्ट आते हैं और बड़ा बननेके बाद भी कष्ट छूटते नहीं हैं किन्तु बढ़ते ही जाते हैं। क्योंकि कल्पनाओंकी और व्यवस्थावोंकी कुछ हद नहीं है लोकमें। तो काहेका बड़ा और काहेका छोटा ? दुनियामें ये सब एक समान है।

ज्ञानीका परिज्ञान व अन्तः प्रसाद—जिसने अपना स्वरूप संभाला, वस्तु की स्वतंत्रताका भान किया, जो कि शांति और संतोषका कारण है। ममता न रही तो अब क्लेश किस बातका ? सारा क्लेश तो ममताका है घरमें भी रहे तो भी कर्तव्य तो यह गृहस्थ ज्ञानी निभायेगा सेवा शुश्रूषा उपचार करेगा, पर आकुलित न होगा। हाय, अब क्या किया जाय ? हमें कुछ सूझता नहीं, ऐसी आकुलता न मचायेगा। वह तो जानता है कि हमें सब सूझता है कि कितनी बिकट बीमारी है। या तो अच्छा हो जायेगा या मर जायेगा। अच्छा हो जायेगा तो ठीक है और मर जायेगा तो संसारका यह तो नियम ही है। हम तो परिपूर्ण ज्योंके त्यों ही हैं। यहां कुछ घटता नहीं है। उसे यथार्थ परिज्ञान है क्योंकि मोह नहीं रहा। सबसे बड़ी कमाई यही है कि मोह न रहे क्योंकि कमाई के फलमें चाहते हैं आप आनन्द किन्तु बाह्यवस्तुवोंके संचयमें आनन्द कहीं न मिल पायेगा और मोह नहीं रहा तो लो आनन्द हो गया।

परिज्ञानका फल निर्मोहता—भैया ! मोह न रहे इसके ही लिए इन सब अजीवोंका वर्णन इस अधिकारमें किया गया है। ये अजीव ऐसे हैं, इनका यह लक्षण है, मुझसे अत्यन्त पृथक् हैं। इनके परिणमनसे मेरा परिणमन नहीं, मेरे परिणमनसे इनका परिणमन नहीं। रंच भी सम्बन्ध नहीं है। यह मोही जीव स्वयं अपनी ओरसे परवस्तुवोंका लक्ष्य करके इस अपने

कर रहा है। अशुद्धता केवल जीव और पुद्गलमें होती है। धर्मादिक चार द्रव्योंमें तो सदा शुद्धि ही रहती है। शुद्ध हो या अशुद्ध हो सर्वत्र द्रव्योंमें स्वरूपकी स्वतन्त्रता है।

स्वतन्त्रताकी उपासना—ऐसे बहुत प्रकारके वर्णनमें पद पद पर स्वतन्त्रताका उद्घोष किया गया है। जो पुरुष ऐसे यथार्थ स्वतंत्र स्वरूपको कठमें धारण करेगा उसका लोकमें बड़ा शृङ्गार होगा और जो जीव वस्तु के इस स्वतंत्र स्वरूपको हृदयमें धारण करेगा उसकी बुद्धि बहुत पैनी बनेगी और जिसकी प्रज्ञा पैनी बनेगी वह इस समयसारको शीघ्र प्राप्त करेगा, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इन सब वर्णनोंसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि मैं अन्य सर्वपदार्थोंसे, अतत्त्वोंसे निवृत्त होकर चिदानन्दमय आत्मस्वरूपमें उपयोगी बनूँ।

❀ नियमसार प्रवचन द्वितीय भाग समाप्त ❀

मुद्रक—जैनसाहित्य प्रेस, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।